समद मीर

*

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप मे राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं, जिसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है । भारत में लेखन-कला का संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख ।

नागार्जुनकोण्डा : दूसरी सदी ईसवी

सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

समद मीर

लेखक

मोतीलाल साक़ी

अनुवादक

शशि शेखर तोषखानी

साहित्य अकादेमी

Samad Mir : Hindi translation by Shashi Shekhar Toshkhani of Moti Lal Saqi's monograph in Kashmiri. Sahitya Akademi, New Delhi (1992), Rs. 15.

प्रथम संस्करण १९९२

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, ३५ फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली ११० ००१

विक्रय विभाग: 'स्वाति', मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली ११० ००१

क्षेत्रीय कार्यालय

जीवनतारा बिल्डिंग, २३ ए/४४ एक्स, डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता ७०० ०५३

१७२, मुम्बई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई ४०० ०१४

३०४-३०५, अन्ना सलाई, तेनामपेठ, मद्रास ६०० ०१८

१०९, जे. सी. मार्ग, बंगलौर ५६० ००२

मूल्य : पन्द्रह रुपये

ISBN 81-7201-297-7

लेज़रसैटिंग : मैरिट आर्ट्स, नयी दिल्ली ११० ०२८

मुद्रक : सुपर प्रिन्टर्स, दिल्ली - 51

क्रम

दो शब्द

समद मीर मेरे प्रिय कवि हैं। उनकी कविता की ओसभीगी छांह में मैं जवान हुआ हूँ। मीर के अमर गीतों में आत्मा का नृत्योल्लास और प्राप्ति का आनंद है। मेरा अपना विचार है कि सूफ़ी काव्य (जिसके अंतर्गत मैं लल्लेश्वरी के 'वाखों' और शेख़ नूरूद्दीन के 'श्लोकों' को भी रखता हूँ) हमारे साहित्य की सब से मूल्यवान और चिरस्थायी पूंजी है। इस पूंजी में कुछ ऐसी चीज़ें हैं जो बहुत श्रेष्ठ हैं। इसी पूंजी में से चुनने पर ऐसा बहुत कुछ मिलेगा जिसे हम विश्व साहित्य के समकक्ष रख सकते हैं।

यह विनिबंध साधारण पाठकों के लिये है। दार्शनिक सूक्ष्मताओं के विवेचन से मैं जहाँ तक हो सका है पीछे रहा हूँ। किंतु इस विनिबंध को पढ़कर साहित्यिक इतिहासकार अथवा आलोचक निराश न हों, इसलिये मैंने उनके लिये भी सोचने की सामग्री प्रस्तुत की है। अंत में मैं साहित्य अकादेमी के सचिव श्री इंद्रनाथ चौधरी और कश्मीरी परामर्श समिति के संयोजक जनाब गुलाम नबी गौहर को धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ जिन्होंने मुझे यह विनिबंध लिखने का उत्तरदायित्व सौंपा और मेरे उस सपने को साकार किया जो मैंने बहुत समय पूर्व देखा था। मैं उन मित्रों का भी आभारी हूँ जिनकी पुस्तकों से मुझे यह विनिबंध लिखने में सहायता मिली। इस विनिबंध की विशिष्टता यह है कि इसमें मीर के जीवन के अपरिचित प्रसंगों के अतिरिक्त उनके काव्य के कुछ अप्रकाशित अंशों को भी पहली बार प्रकाश में लाया गया है। ये कविताएँ 'कुलयात-ए-समद मीर' (समद मीर रचनावली) के दो संस्करण प्रकाशित होने तक उपलब्ध नहीं थीं। इस विनिबंध को कश्मीरी में किसी भी कवि पर लिखा जाने वाला पहला विनिबंध होने के नाते एक मील का पत्थर माना जा सकता है।

माहनूर (कश्मीर),
१७ अप्रैल १९८६

मोतीलाल साक़ी

जीवन-वृत्त

कश्मीरोत्सव १९५६। चारों ओर चहल-पहल। कश्मीर का कश्मीर जैसे हर्ष और उल्लास से भर उठा था। हर कहीं गाने-बजाने, हँसने-खेलने का वातावरण था। 'भांड जश्न'[1] चल रहे थे, 'रोव'[2] गीतों की गूँज थी। जम्मू से भांगड़ा नर्तक बुलाये गये थे और लोग जगह-जगह पर इस पंजाबी लोक-नृत्य का आनंद ले रहे थे। उर्दू के बड़े-बड़े शायर भी आमंत्रित किये गये थे और नामी क़व्वाल भी।

इसी उत्सव के अंतर्गत 'शबे-शालीमार' का आयोजन हो रहा था। एक स्मरणीय संध्या थी यह। शालीमार उद्यान लोगों से भर आया था। चारों ओर जैसे रोशनी की चादर झलमला रही थी, ऐसा लगता था जैसे धरती पर स्वर्ग उतर आया हो। उद्यान की ऊपर वाली बारादरी पर मुशायरा होने जा रहा था। आमंत्रित शायरों के साथ-साथ बख़्शी साहब[3] भी वहाँ आ पहुँचे थे और बारादरी पर जाकर बैठ गये थे। आम तौर पर मुशायरों में बख़्शी साहब के आ जाने पर कार्रवाई शुरू कर दी जाती थी ताकि आयोजकों को उनके सामने अपनी हाज़िरी देने का अवसर मिले। लेकिन इस मुशायरे में बख़्शी साहब के आने के बाद भी कार्रवाई शुरू होने में अभी देर थी। शायद कोई विशेष अतिथि आने वाला था जिसके बारे में हम नौजवान कवियों को कोई जानकारी न थी। कोई पांच-दस मिनट बीते होंगे कि बुज़ुर्ग शायरों में फुसफुसाहट शुरू हुई, "आ गये !" वे एक-दूसरे से कह रहे थे, "लो, सीढ़ियों के पास पहुँच गये।" बख़्शी साहब आगंतुक व्यक्ति के स्वागत को उठे और उसे बाँह पकड़ कर सम्मानपूर्वक बारादरी पर बैठाया; फिर स्वयं भी उसके पास ही बैठ गये। बारादरी पर तशरीफ़ लाने वाला वह व्यक्ति कश्मीरी टोपी और फिरन[4] पहने हुए था। कंधे पर उसने एक चादर डाल रखी थी। यों आगंतुक में कोई ख़ास बात नज़र नहीं आ रही थी। दूर से देखने पर

---

१. कश्मीरी लोक-नाट्य प्रकार। २. एक कश्मीरी लोक-नृत्य।

३. जम्मू-कश्मीरी के तत्कालीन प्रधान मंत्री, बख़्शी गुलाम मुहम्मद।

४. कश्मीरियों का विशेष परिधान।

उसकी शक्ल-सूरत एक किसान की-सी लगती थी। लेकिन महफ़िल में हर व्यक्ति का ध्यान उसी पर केंद्रित था। बख़्शी साहब उससे बातें करने में व्यस्त थे। श्रोतागण उसी समय जान गये थे कि आगंतुक कोई सम्मानित व्यक्ति है, जब बारादरी पर बैठे सभी लोग उसके स्वागत-सत्कार के लिये उठ खड़े हुए थे। आस-पास के तमाशबीन भी उसे एकटक देख रहे थे। मुशायरे में बुलाये गये शायरों में एक मैं भी था। मैंने नज़र उठा कर देखा तो पहचानने में कोई मुश्किल नहीं हुई। ये तो अपने समद मीर थे, कश्मीर के एक प्रतिष्ठित बुज़ुर्ग कवि जिनके गीत वर्षों से कश्मीर के वायुमंडल में गूँज रहे थे, और जिनकी ख्याति उत्तर से लेकर दक्षिणी कश्मीर तक हर कहीं फैल चुकी थी। यह उनका पहला मुशायरा था जिसमें उन्होंने जाने क्या सोचकर भाग लेना स्वीकार किया था – और आख़िरी भी। मैं तो उन्हें बचपन के दिनों से जानता था और कितनी ही बार देख भी चुका था। क्रमशेर गांव में मेरे ननिहाल में उनकी चर्चा प्रायः किसी-न-किसी बहाने हुआ करती थी। सभी कहते कि मीर साहब एक दरवेश हैं और साथ ही एक शायर भी; बड़े भले आदमी हैं। हम बच्चों से कहा जाता कि मीर साहब जहाँ भी दिखायी दें, उन्हें सादर प्रणाम करें, उनका आशीर्वाद लें क्योंकि बुज़ुर्गों के आशीर्वाद से ही मनुष्य को सुख-शांति मिलती है। ये सभी बातें मुझे पूरी-की-पूरी याद थीं और आज उन्हें फिर से सामने देखकर ये पुरानी यादें ताज़ा हो गयीं। मेरे ननिहाल के सामने ही घर था पंडित माधवराम का, जहाँ उनका काफ़ी आना-जाना था। माधवराम और समद मीर घनिष्ठ मित्र थे। दोनों अध्यात्म-मार्ग के राही थे। एक-दूसरे के सामने वे अपना दिल खोलकर रख देते और यों जी का बोझ हलका करते थे। कमरे में बैठकर वे घंटों आपस में बतियाते, और आँगन में खेल रहे हम बच्चे चुपके-चुपके जाकर झाँकते कि वे क्या कर रहे हैं। कभी-कभी उनकी मुलाक़ातें देर रात तक चलतीं। माधवराम की पत्नी तुलसीदेवी आतिथ्य में कोई कोर-कसर न उठा रखतीं। माधवराम के सिधारने के बाद भी मैंने समद मीर को कई बार तुलसीदेवी के यहाँ आते-जाते देखा था। तुलसीदेवी एक भली महिला थीं। मीर साहब की बेटी राहती का विवाह मेरे ननिहाल के पड़ोस में ही शेख़ परिवार में हुआ था। पड़ोसी तो क्या ये दोनों परिवार एक-दूसरे के काफ़ी निकट थे। मीर

साहब को मैंने शेख़ परिवार में भी कई बार देखा था। बारादरी पर समद मीर को देखकर ये सारे दृश्य मेरी आंखों के सामने घूम गये। लगा ये कोई ग़ैर नहीं, अपने ही बुजुर्ग हैं जिनका हम सदा से आदर-सम्मान करते आये हैं। मैंने गर्व महसूस किया और इतना प्रसन्न हुआ जैसे कोई अनमोल वस्तु मेरे हाथ लगी हो।

मुशायरे में समद मीर ने एक पुराना ही गीत सुनाया। यह वही गीत था जिसे लेकर कभी बड़ा हंगामा हुआ था, यहाँ तक कि लोग उन्हें 'हुक्मे-काफ़िर' सुनाने यानी काफ़िर घोषित करने पर उतर आये थे। ऐसा इसलिये कि इस गीत में मीर ने कहा था :

न वह ऊपर आकाश में है
न कहीं नीचे
किसे बताऊँ, उस तक तो विचार भी नहीं पहुँचता।

पर १९५६ की बात ही दूसरी थी। अब तक लोग उन्हें एक साधक के रूप में जान और मान चुके थे और उनके गीतों को सिर-आंखों लगा लेते थे। उस दिन जब उन्होंने यह गीत सुनाया तो लोग खुले दिल से दाद देने लगे। बख़्शी साहब उनकी ओर यों देखने लगे मानों उन्होंने कुछ अमूल्य पा लिया हो।

मुशायरे के बाद उन्हें जैसे-तैसे राज़ी करके रेडियो वाले रेडियो स्टेशन ले गये, जहाँ उनसे एक भेंट रिकॉर्ड की गयी जो अब भी वहाँ के पुराने टेपों में सुरक्षित है। इन दो कार्यक्रमों को छोड़कर उन्होंने कभी किसी सरकारी अथवा ग़ैर-सरकारी कार्यक्रम में भाग नहीं लिया। अपने जीवनकाल में ही समद मीर को जो यश प्राप्त हुआ उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि वे बड़े भाग्यशाली थे। एक कवि के रूप में ही नहीं अपनी आध्यात्मिक उपलब्धियों के कारण भी उन्होंने काफ़ी नाम अर्जित किया। पर इस नाम का उन्होंने कभी व्यापार किया हो, ऐसी बात नहीं। उन्होंने न कभी अपनी कविता को बेचा और न साधना को। जीवन की रोज़मर्रा की भागदौड़ में हिस्सा लेते हुए भी वे अपने रास्ते पर चलते रहे। कश्मीर में लोकतंत्र की स्थापना के बाद भी वे काफ़ी वर्षों तक जीवित रहे, किंतु कभी किसी के पास हाथ फैलाने नहीं गये, न अपने आत्म-सम्मान को कोई आँच आने दी। किसी सुविधा की

किसी सुविधा की प्राप्ति या किसी फ़ायदे के लोभ से उन्होंने कभी किसी का द्वार नहीं खटखटाया। हमेशा एक मस्त-मौला कलंदर का जीवन बिताया। वे चाहते तो इन सब चीज़ों को पा लेना उनके लिये कोई बड़ी बात न थी। उनके पास नाम था और आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रतिष्ठा भी। ढोल पीटने वालों की भी कोई कमी न थी। पर अपने आत्म-विश्वास के बल पर वे हर भंवरजाल से बच निकले। जीवन के घटाटोप अंधेरे में उन्होंने हर मोड़ पर अपने संकल्प की ज्योति को प्रज्ज्वलित रखा। उनकी एक अलग ही दुनिया थी जिसे वे सजाते-संवारते रहे, कभी किसी पर बोझ बनना स्वीकार नहीं किया। कश्मीर में तब प्रगतिवाद का ज़ोर था। प्रगतिशील कवि एक नये जीवन का स्वप्न दिखलाते हुए जनजागरण का ध्वज लिये निकल पड़े थे। अपने इरादों और आकांक्षाओं को पूरा करने के लिये वे कभी इसका द्वार खटखटाते तो कभी उसका। कभी एक गुट का साथ देते तो कभी दूसरे का – स्वयं को महानता से मंडित करने के लिये। अपने आप को प्रकाश में लाने के लिये एक-दूसरे से मार-पीट भी करते थे। लेकिन इस सब हंगामें से अलग मीर आध्यात्मिक संगीत सुनते रहे, शून्य में से सृष्टि के उद्भव की परिकलपनाएँ करते हुए। समद मीर और अहद ज़रगर जैसे कवियों की महानता इस बात में थी कि इस बीसवीं शताब्दी में भी अपने ज्ञान की डुगडुगी उन्होंने नहीं पीटी। वे महानता के पीछे नहीं दौड़े, महानता ही उनके पीछे चली आयी और उनके पाँव चूमने को विवश हुई। अपने समय के सत्ताधीशों के साथ समझौता उन्होंने नहीं किया, अपने ही हाल में मग्न रहकर अपने मस्तमौलापन को, फ़क़ीरी ठाठ को बनाये रखा। उन्होंने अपनी आँखों के अंदर एक ज्योति को प्रज्ज्वलित रखा और अंतरतम की खिड़कियों को खोलकर जीवन-पथ को प्रकाश से भर दिया। कल्चरल अकादेमी[५] की स्थापना होते-होते मीर चल बसे, किंतु अहद ज़रगर ने जो कुछ किया उसे हमारे साहित्य के इतिहास में हमेशा याद रखा जायेगा; यह ज़ोर देकर कहा जायेगा कि उन्होंने सरकारी सम्मानों की कभी परवाह न की। सत्ताधीशों को भ्रम में रखने के लिये वे छिपकर बैठे ताकि उन्हें कोई किसी प्रकार का

---

५. जम्मू-कश्मीर राज्य की सांस्कृतिक अकादेमी।

(राजकीय) सम्मान या पुरस्कार स्वीकार करने के लिये बाध्य न करे। सूफी कवियों के बारे में कहा जा सकता है कि वे सुनिश्चित नैतिक सिद्धांतों का पालन करते थे। आध्यात्मिता से सरोकार रखने के कारण वे इस दुनिया और उसके पचड़ों के मोहजाल में नहीं पड़ते थे। दुनिया को सुधारने के लिये वे किसी दूसरे का सहारा लेने के बजाय स्वयं अपने हाथों-पैरों पर आश्रित रहते। सच कहा जाये तो ऋषियों[६] के बाद ये सूफ़ी ही थे जिन्होंने हमारी समन्वित संस्कृति के ध्वज को उड़ाया। जो लोग सांसारिक लाभों के पीछे भागने वाले थे उन्होंने इन लाभों के लिये अपनी मातृभाषा तक को ठोकर मारी, किंतु सूफ़ी कवि कश्मीरी भाषा की सेवा करते रहे, उसकी झोली को अनमोल रत्नों से भरते रहे। कश्मीरियों के पढ़े-लिखे वर्ग ने हमेशा उधर की ओर रुख किया जिधर को हवा बह रही हो, लेकिन सूफ़ियों-संतों-दरवेशों ने संस्कृति के चिराग़ों को जलाये रखा। भाईचारे की हमारी शताब्दियों से चली आयी परंपरा हो अथवा हमारे उठने-बैठने, खाने-पीने का ढंग—उन्होंने उसे बनाये रखा। इस चिरस्थायी और ज्योतिर्मय परंपरा के एक महान ध्वजवाहक थे समद मीर। जनसाधारण से उन्होंने अपने आपको कभी अलग नहीं रखा। वे उन्हीं के बीच उठते-बैठते रहे, कभी यह विचार मन में नहीं लाया कि वे सामान्य लोगों से कुछ ऊपर या अलग हैं। आम लोगों के बीच रहने के कारण उनकी अवलोकन शक्ति और प्रखर हुई। इस शक्ति के माध्यम से उन्होंने कश्मीरी भाषा को इतना समृद्ध किया कि कोई दूसरा उनकी समानता नहीं कर सकता।

समद मीर का जन्म नरवरा में अलक साहब नाम के स्थान पर १८९३ में हुआ था। उनके पिता, जिनका नाम ख़ालिक मीर था, मूलतः नंबलहार गांव (बडगाम) के रहने वाले थे। ज़मीन-जायदाद उनके पास कुछ ज़्यादा न थी, बस गुज़ारा भर हो जाता था। परिवार को पालने के लिये वे आरीकशी का काम भी करते थे, और मेहनत-मज़दूरी भी। उनमें एक और विशेषता थी – श्रम का भार बढ़ जाने पर वे थकान मिटाने के लिये कभी-कभी गुनगुना लिया करते थे। उन्होंने बहुत से गीतों की रचना की थी, पर इन गीतों का बहुत बड़ा भाग आज लुप्त हो चुका है। ख़ालिक मीर के एक सुप्रसिद्ध गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

---

६. शेख़ नूरुद्दीन द्वारा स्थापित कश्मीर का मुसलमान 'ऋषि' सम्प्रदाय।

अऽ पोशो जिगर गोशो
अछ पोशो लो लो...

अर्थात्–

मेरे हृदय में समाने वाले
ओ कार्तिक पुष्प
देख तो यह ख़ालिक[७] तेरे ही पास आया है
सफ़ेद हो चुकी है उसकी दाढ़ी अब तो
उसकी तू लाज रख
दुहाई है तुझे
तेरी शरण में आया हूँ मैं
ओ कार्तिक पुष्प !

ख़ालिक मीर का कविता करने का अंदाज़ अच्छा था, मगर थे वे निपट अनपढ़। किसी से कुछ लिख-लिखाकर भी रखा नहीं, क्योंकि नाम की कोई लालसा उन्हें नहीं थी। मस्तमौला आदमी थे। दिन में मेहनत-मज़दूरी करते और रात को ख़ुदा की याद। कविता तो वे बस मन के भावों को व्यक्त करने के लिये करते थे। उनकी कितनी ही कविताएँ उनके शिष्यों को ज़बानी याद थीं। पर जब वे इस दुनिया से सिधारे तो जो बचा रह गया वह आटे में नमक के बराबर भी न था।

ख़ालिक मीर का पहला विवाह नंबलहार गाँव में हुआ था। थोड़ा-बहुत कुछ जोड़-जाड़ कर वे गुज़ारा कर लेते थे। अपने इस हाल पर वे खुश थे, पर तभी उनके सुखी जीवन में एक दरार पड़ी। उनकी पत्नी देखते-देखते इस दुनिया को छोड़ गयी। हालांकि उन्होंने गुरु भी धारण किया था, मगर यह सदमा उनके लिये काफ़ी भारी साबित हुआ। वे इसे बर्दाश्त न कर सके और घर-बार छोड़-छाड़ कर चले गये। कुछ समय तक वे निरुद्देश्य भटकते रहे। न उनका कोई पता था, न ठिकाना। एक ठौर से उठकर दूसरे ठौर के लिये चल देते और इस तरह समय के सुनसान पथ को पार करते रहे। कुछ ख़ुदा-दोस्त बुज़ुर्गों के साहचर्य में उन्होंने अपने-आपको थोड़ा-बहुत संभाला

---

७. ख़ालिक का शब्दार्थ है सृष्टिकर्ता।

ज़रूर, पर नंबलहार गांव जाने का नाम न लिया। वे श्रीनगर चले गये और वहाँ जाकर आरीकशी का काम करने लगे। वहीं पर वे दिन-दिन गुज़ारने लगे। घर में ज़मीन-जायदाद के नाम पर जो कुछ था उसे चचेरे भाइयों ने हड़प लिया। कुछ समय के लिये ख़ालिक मीर ने नरवरा में अलक साहब नामक स्थान को ठिकाना बना लिया और यहीं पर दूसरी शादी कर डाली। बहुत समय तक नंबलहार गाँव लौटने का विचार उन्होंने मन में न लाया। पहली बीवी के मरने से उन्हें शायद इतना गहरा सदमा पहुँचा था कि वहाँ जाने के नाम से उनकी टांगें काँपने लगती थीं। दूसरी बीवी से ख़ालिक मीर के तीन पुत्र हुए – समद मीर, रहीम मीर और मुहम्मद मीर। हैसियत इतनी न थी कि बच्चों को पढ़ाते-लिखाते। सो जब से बच्चों ने होश संभाला, वे काम की तलाश में चल पड़े – और वही आरीकशी का पैतृक धंधा सबने अपनाया। जिससे जितना बन पड़ता वह उतना काम करता। ज़िम्मेदारी का यह बोझ उन पर उस समय और भी बढ़ गया जब वृद्ध ख़ालिक मीर के मन में अपने पैतृक स्थान का मोह उमड़ा। ऐसा नहीं कि उन्हें पैतृक संपत्ति की तलाश थी, उन्हें तलाश थी एक ऐसे स्थान की जहाँ वे एकांत में बैठकर अपने को पहचानते। वे उठकर चल दिये और नंबलहार गाँव से कुछ फासले पर एक जलाशय के किनारे चिनारों के झुरमुट के बीच पर्णकुटी बनाकर यादे खुदा करने लगे। इस स्थान का नाम था 'अगर' जहाँ ख़ालिक मीर कई वर्षो तक रहकर खुदा की ख़िदमत करते रहे। वे यहीं रह रहे थे जब उन्हें ऊपर का बुलावा आया और अपनी उस पर्णकुटी के पास ही उन्हें दफ़नाया गया। आज भी उनकी कब्र उस स्थान पर अच्छी हालत में मौजूद है।

सयाने होने पर समद मीर काफ़ी समय तक नरवरा में ही रहे। पिता ने ग्यारह की उम्र में ही उनकी शादी चचेरी बहन से कर दी थी। कंधों पर ज़िम्मेदारी और घर-गृहस्थी का बोझ आ पड़ने के कारण उन्हें बहुत दिनों तक नंबलहार के बारे में सोचने का मौका ही न मिला। मेहनत-मज़दूरी करके वे अपने दिन बिताने लगे। कभी कोई छोटा-मोटा बोझा ढो लेते, तो कभी बढ़इयों-राजगीरों के साथ निकल कर उनके सहायक मज़दूर का काम करते। सोलह-सत्रह के होते-होते उन्होंने आरीकशी का काम भी शुरू कर दिया था, जो उनका पुश्तैनी धंधा था। पर दुनियादारी के चक्कर में पड़कर भी वे कभी

अपने कर्तव्य को न भूले। पिता गाँव लौटे तो वे भी उनकी खोज-ख़बर लेने नंबलहार आते-जाते रहे।

शहर (श्रीनगर) में उन्हें आरीकशी का काम साल के साल मिलता हो, ऐसी बात नहीं थी। कंधे पर आरी उठाये वे एक जगह से दूसरी जगह के लिये निकल पड़ते और जहाँ भी काम मिलता वहीं पर अपनी चार आने-पैसे की कमाई कर लेते। आरीकशी के काम के सिलसिले में वे हंदवाड़ा भी गये जहाँ वे कुछ वयोवृद्ध पंडितों के संपर्क में आये। उन्हीं के माध्यम से मीर पहली बार 'शास्त्र' (हिन्दू धार्मिक और दार्शनिक विचारों) से परिचित हुए। ज्ञान की इस पूंजी में उस समय और भी वृद्धि हुई जब कमशेर के पंडित माधवराम से उनकी मित्रता हुई। वह मित्रता तब तक बनी रही जब तक पंडित माधवराम जीवित रहे। उनकी मृत्यु के बाद भी समद मीर का उनके परिवार वालों से स्नेह-संबंध बना रहा।

सूफ़ी साधना की चिनगारी उनके मन में पिता के साहचर्य में पड़ी थी यह ऐसी चीज़ थी जो उनके रक्त में विद्यमान थी। चिनगारी धीर-धीरे सुलगती रही और तेज़ होती रही और जब उन्हें नंबलहार में उस्ताद हबीब का पता चला तो इसने एक लौ का रूप धारण कर लिया। उस्ताद हबीब नंबलहार के साथ वाले गाँव वागुर के रहने वाले थे। आध्यात्म के क्षेत्र में वे बहुत-सी मंज़िलें पार कर चुके थे। समद मीर ने जाकर उनके चरणों में अपना सिर रख दिया। उनका दामन थाम कर वे उनके शिष्य बन गये। चिनगारी अब लपट का रूप धारण करने लगी थी। अब तो नंबलहार जाना उनके लिये और भी ज़रूरी हो गया। पिता और गुरु दोनों वहीं पर थे। और उन्हें दोनों का मान रखना था, दोनों की ही आज्ञाओं का पालन करना था। धीरे-धीरे अपने पैतृक स्थान के प्रति उनका मोह बढ़ने लगा और वे नंबलहार जाकर वहीं बस जाने को मजबूर हुए। इसमें पिता और अपने गुरु के प्रति उनकी श्रद्धा का काफ़ी हाथ था। अपनी प्रारंभिक कविताओं में उन्होंने इसी कारण अपने लिये समद नरवरी उपनाम का प्रयोग किया है :

ओ समद नरवरी, सचेत हो जा तू !

इससे उनकी प्रारंभिक कविताओं को सुविधापूर्वक पहचाना जा सकता है। नंबलहार में आकर बस जाने के बाद उन्होंने जो काव्य रचा, उसमें भी

वे अपने स्थान का परिचय देना नहीं भूले :

समद मीर को तो देखो, कैसे रूठकर नंबलहार में जा बैठा है

खै़र, इस अवांतर प्रसंग को रहने दें। उस्ताद हबीब उन्हें बराबर मंज़िल तक पहुँचा नहीं पाये। उनका समय आ पहुँचा था और वे प्रस्थान कर गये। लेकिन जाने से पहले समद मीर से कह गये कि मेरे बाद दांदखाह (बटमालू) के उस्ताद ख़ालिक तुम्हारा मार्गदर्शन करेंगे।

क्रमशेर के अहमद बट समद मीर के गुरु भाई थे। उन्होंने कुछेक गीतों की भी रचना की है। अभी उन्होंने कोई दस-बारह गीत ही रचे थे कि गुरु ने और गीत रचने से मना कर दिया। उस्ताद हबीब के गुज़रने पर अहमद बट ने समद मीर से कहा कि वे उनका मार्गदर्शन करेंगे, पर मीर गुरु का कहा कैसे टालते ? अहमद बट साहब के कई गीत प्रकाशित भी हुए हैं। उनकी गद्दी, जिसकी स्थापना उन्होंने अपनी पुश्तैनी भूमि पर की थी, आज भी क्रमशेर में विद्यमान है, और वहाँ पीरी-मुरीदी का सिलसिला (गुरु-शिष्य परंपरा) यथावत् चल रहा है। इस समय गद्दी पर अहमद बट का नाती आसीन है।

समद मीर के पहले दोनों गुरु, उस्ताद हबीब और उस्ताद ख़ालिक, क़ादिर साहब 'केंहन' के शिष्य थे। क़ादिर साहब कश्मीरी भाषा के अच्छे कवि थे। वे रहमान डार के शिष्य थे जिनकी सुप्रसिद्ध कृति 'शबरंग' आदमी को कहाँ से कहाँ पहुँचा देती है। कविता समद मीर को एक तरह से पैतृक और आध्यात्मिक उत्तराधिकार में प्राप्त हुई थी। उनके बाद भी यह सिलसिला चलता रहा। समद मीर के पुत्र 'आसी' भी कवि थे और उनके बड़े बेटे गुलाम रसूल का पुत्र भी कविता करता है। मीर ने स्वयं भी यह बात कही है :

मीर कोई कच्चा नहीं निकला
पीढ़ियों मदिरा का पान कराता आया है

मज़दूरी करने के बाद समद मीर दिन भर की कमाई मुरशिद (गुरु) के आगे रख देते थे। अक्सर वे उस्ताद ख़ालिक के साथ ही काम पर निकलते और ख़ालिक उनके कमाये पैसों में से उन्हें जो कुछ भी उठाकर दे देते, उसी पर वे अपना और अपनी पत्नी का निर्वाह करते। उस्ताद के साथ ही

वे गुपकार में महाराजा के महल में जाते और बढ़ई के सहायक मज़दूर के रूप में काम करते। यहीं पर उन्होंने अपने पहले गीत की रचना की थी जो बाद में काफ़ी प्रसिद्ध हुआ। मेरे बचपन के दिनों में यह गीत बहुत ही लोकप्रिय था :

सखि यह कठिन काम
मेरे लिये तो भारी बोझ बन गया
क्या करूँ, निभाना ही पड़ा
गुले लाला जैसे मेरे तन का रंग
काला पड़ गया
क्या करूँ, निभाना ही पड़ा

इस गीत में आंतरिक लय का श्रुतिमधुर और मार्मिक संगीत है जो सीधे हृदय में उतर जाता है। इसमें समद मीर के प्रारंभिक जीवन की एक झलक भी साफ़ मिलती है। इसमें कुछ खो देने की तीव्र अनुभूति है। कठिन काम के बोझ के भाव को मीर ने गहराई और मार्मिकता से व्यक्त किया है। पढ़ने वाले को लगता है कि कवि की अनुभूति में वह भी भाग ले रहा है। वास्तविकता की यह कलात्मक अभिव्यक्ति मीर के काव्य को एक अलग ही पहचान प्रदान करती है। मीर की आयु उस समय यही कोई पच्चीस-छब्बीस की रही होगी जब वे शहर को छोड़कर वापस अपने पिता के गाँव में रहने के लिये चले गये थे। चचेरे भाइयों ने मीर की जिस पैतृक संपत्ति को हड़प लिया था उसे वापस करना उन्हें काफ़ी मुश्किल हो रहा था, क्योंकि वे तो उसे मन ही मन अपनी ही समझ बैठे थे। हालाँकि इस सारी संपत्ति का मूल्य उन दिनों कुछ सौ रुपये से अधिक नहीं रहा होगा, पर हाथ में आयी चीज़ को कौन जाने देता है। मीर को काफ़ी संघर्ष करना पड़ा और लिहाज़-मुलाहिज़े को एक तरफ़ रखना पड़ा, तब भी अपनी पैतृक संपत्ति का एक भाग ही वे वापस पा सके। यहीं उन्होंने अपना ठिकाना बनाया और वर्षों से उजड़े मकान को फिर से संभाला। एक-एक चीज़ के लिये उन्हें नये सिरे से जुगाड़ करना पड़ा। घर में पानी भरने को फूटा घड़ा भी न था, और चीज़ों की बात ही नहीं। लेकिन मीर ने हिम्मत नहीं हारी। सच्चे पुरुष की तरह सारा ध्यान उन्होंने अपने अस्त-व्यस्त घर को व्यवस्थित करने में

लगाया, जिसे देखकर लोग हैरान रह गये। धीरे-धीरे, बड़े धैर्य से उन्होंने एक नये ही घर का निर्माण कर डाला। सच कहा जाये तो उन्होंने उसे हंसते-हंसते संभाला, न किसी के आगे हाथ फैलाया, न किसी का एहसान लिया, न सगे-संबंधियों का सहारा ही। रातों का आराम छोड़ वे साधना पथ पर बढ़ते रहे। सुबह से शाम तक खटकर वे घर-रूपी पहिये को एक जफ़ाकश मज़दूर की तरह ठेलते रहे। आखिर उन्हें अपने परिश्रम का फल मिला और कुछ ही वर्षों में गाँव के साग-भात खाने वाले लोगों में उनकी गिनती की जाने लगी।

मीर की ज़िंदगी का एक दिलचस्प पहलू यह था कि वे एक व्यावहारिक व्यक्ति थे। लोक और परलोक दोनों को उन्होंने एक साथ सुधारने का प्रयत्न किया। न परलोक के लिये उन्होंने इस लोक को त्यागा और न इस लोक के लिये परलोक की उपेक्षा की। वे दुनिया से भागे नहीं, न उन्होंने इस दुनिया को पा लेने और भोगने को ही जीवन का उद्देश्य माना। अतिवाद छोड़ वे बीच के रास्ते पर चलते रहे, हालांकि जिस हालत में वे नंबलहार गाँव लौटे थे उसे देखते हुए उनके लिये संसार को त्याग कर एकांतवास करना ही ज़्यादा आसान और सुविधाजनक होता। मीर के जीवन के ये कुछ पहलू ऐसे हैं जो जानने योग्य और ध्यान देने योग्य हैं। इनसे यह बात भी साफ़ होती है कि वृद्धावस्था में पैर रखने पर भी, जब उनका नाम चारों ओर फैल चुका था, मीर ने व्यावहारिक जीवन से मुँह नहीं मोड़ा, बल्कि अभ्यास के अनुसार अपने दैनिक कर्तव्यों को निभाते रहे। उनके आध्यात्मिक जीवन और गार्हस्थिक जीवन के बीच ज़रा भी विरोध नहीं था। पलायन की बात कभी मन में न लाकर वे व्यावहारिक जीवन के क्षेत्र में डटे रहे। इससे उनके जीवन में एक सामंजस्य, एक खरापन और एक संतुलन आ गया। अपने अंतिम दिनों तक वे घर में सब लोगों के सो जाने के बाद चौकसी करने को निकलते कि सब ठीक-ठाक है या नहीं। उठते वे आधी रात को थे। पर इस तरह से कि किसी को कानोंकान ख़बर न होती, और फिर घर के बाहर चले जाते और घंटों बाहर ही रहते। यह बात उनकी पत्नी को मालूम तो थी, पर इस रहस्य पर उन्होंने अपने जीते-जी कभी प्रकाश न डाला। वे कहाँ जाते, क्या करते थे, इसका उनके घर के लोगों को पता ही

न चलता, बाहर के लोगों की फिर बात ही क्या थी। पौ फटने के समय जब वे लौटते तो थोड़ा खाँसते-खखारते ताकि बाकी लोग समझ जायें कि अब जागने का समय हो गया है। घर लौटने के बाद वे फिर से जाकर लेट जाते। देखने वाले यही सोचते कि अरे मीर साहब तो देर तक सोते हैं। मीर को इस बात का अहसास था कि अपने लिये दूसरों को कष्ट देना ठीक नहीं, और इस बात का भी कि साधना का अर्थ दिखावा करना नहीं। साधना का अर्थ तो बिना किसी को कष्ट दिये एकांत में ईश्वर के नाम का स्मरण है। इसी सिद्धांत को उन्होंने जीवन भर अपनाये रखा।

खाने-पीने के मामले में वे बहुत ही नियम-कायदे से चलते थे। नज़ाकत और नखरा उन्हें छू भी नहीं गया था। वे जीने के लिये खाना खाते थे, खाना खाने के लिये जीते नहीं थे। नींद से उठने पर वे दो प्याले कहवा पी लेते और इसके कुछ देर बाद कोई आधा प्याला कश्मीरी नमकीन चाय। चाय के साथ आम तौर पर वे चावल या मक्की का सत्तू लेते थे, चाय के साथ रोटी लेने की उन्हें कोई ख़ास आदत न थी। दोपहर के समय वे चावल लेते, मगर इतने थोड़े से कि कोई बच्चा भी उससे ज़्यादा खा ले। माँस के वे कोई ज़्यादा शौकीन न थे, यही बोटी-दो बोटी खा लेते और फिर घिन हो जाती। हाँ, साग-सब्ज़ी उन्हें बड़ी पसंद थी। करेले और तोरई की तरकारी तो उन्हें विशेष रूप से प्रिय थी। इन तरकारियों के साथ खाना खाने में उन्हें बड़ा स्वाद आता। असल में नफ़्स यानी पेट को उन्होंने नियम में रखा था। पेट के वश में होने के बजाय पेट को ही वश में कर लिया था। नफ़्स रूपी मस्त हाथी को बाँध कर रखने के कारण वे हमेशा अपने जामे में रहे, किसी से कुछ माँगने को मजबूर न हुए। यही वजह थी कि वे अक्सर दावतों वगैरह में नहीं जाया करते थे। एक ऋषि की तरह उन्होंने अपने आपको रूखा-सूखा खाने का अभ्यस्त कर लिया था। अगर कभी वे किसी दावत पर जाते भी तो उसी सूरत में जब वे किसी जल्दी में होते या कोई बहुत मजबूर करता। दिखावे में रुचि न होने के कारण वे कभी दल-बल सहित किसी के घर नहीं जाते, न खाते समय किसी खास चीज़ की माँग करते। जो मिलता उसे ही सहर्ष-स्वीकार कर लेते। दावत पर कहीं जाने के बाद वे प्रायः घर ही लौटते, या फिर मौसम ठीक हुआ तो रात घर से

बाहर किसी मैदान में या बेद वृक्षों के किसी कुँज में बिताते। किसी के घर पर रात बिताना या न बिताना उनके लिये एक जैसी बात थी। जो व्यक्ति रात के दो पहरों में से डेढ़ पहर घर से बाहर जाग कर बिताता हो, उसके लिये इस बात का कोई महत्त्व न था। खाने-पीने की बात चल रही है तो यह बताना भी प्रासंगिक ही होगा कि वे अलग ही खाते-पीते और अलग ही सोया करते थे। शोर-शराबे में उनकी कोई दिलचस्पी न थी, न फ़िज़ूल की बातों के लिये समय। वे जीवन के एक-एक क्षण का सदुपयोग करने के पक्ष में थे। वे स्वयं तो नियमनिष्ठ थे ही, दूसरों से भी नियमनिष्ठ होने की अपेक्षा करते। सभा में सैकड़ों लोग क्यों न बैठे हों, क्या मजाल कोई आवाज़ भी निकालता ! अगर वे आराम कर रहे होते तो किस में साहस था कि उन्हें जगाता – चाहे वह कितना ही बड़ा आदमी क्यों न हो। कोई यदि दिनों तक उन्हें लगातार अपना दुखड़ा सुनाता रहता तो वे बड़ी विनम्रता से उससे कहते, " 'भाई' जाओ और अपना काम करो। ख़ुदा ख़ैर करेगा।" सुनने वाले को इस बात से ही इतना ढाढ़स मिलता कि वह उनसे विदा लेकर हँसते हुए अपने घर चला जाता। मीर की बात में बला का असर था। बोलते तो ऐसा लगता जैसे सुगंध बिखेर रहे हों। श्रोता उनकी गहन-गंभीर बातों से इतना प्रभावित होता कि सोचने लग पड़ता। ऊंची-ऊंची बातें होने के बावजूद सुनने वाला और अधिक सुनने की इच्छा से कान खोले खड़ा रहता ताकि उसके मन का बोझ कुछ हल्का हो। ईर्ष्या और द्वेष उनके पास फटक भी न पाये थे। अगर वे रास्ते से गुज़र रहे होते तो कोई नहीं जान पाता कि यह सुप्रसिद्ध सूफ़ी और शायर समद मीर जा रहे हैं। आत्म-प्रदर्शन के उद्देश्य से उन्होंने अपनी चाल-ढाल में कभी कोई अंतर नहीं आने दिया। हाँ, नज़र रखने वालों की बात और है, वे तो लाखों में भी उन्हें पहचान लेते। समद मीर की आँखों में एक निराली गंभीरता थी और मुख पर एक अद्भुत कांति। और ये चीज़ें ऐसी हैं जिन्हें पहचानने के लिए आँखें चाहिए।

मीर सड़क पर चल रहे होते तो दायें-बायें देखे बिना तीतर की तरह नपे-तुले पग रखते हुए सीधे निकल जाते, मानों किसी अभियान पर जा रहे हों। वास्तव में वे समय का मूल्य पहचानते थे और उसे नष्ट करना नहीं

चाहते थे। फिज़ूलखर्ची को उन्होंने कभी जाना ही नहीं। अपनी जीवन-यात्रा में उन्होंने जिन कठिनाइयों और कष्टों का सामना किया उनकी वजह से उन्होंने हर चीज़ की कद्र करना सीख लिया था। उन्होंने यह जान लिया था कि जीवन-संघर्ष में सफलता पाने और आगे बढ़ने का अगर कोई रास्ता है तो वह है परिश्रम और समय के सदुपयोग का रास्ता। दूसरों के आगे हाथ फैलाकर या छल-कपट करके जीवन के दिन बिताने से उन्हें नफ़रत थी। तभी तो उन्होंने कहा है :

पराश्रित मत रह
स्वयं उपजा, स्वयं पैदा कर
विश्वास को दृढ़ रख
और इसके लिए कुछ देना पड़े तो दे
यह मत भूल
मिताई तब है कि जब पलड़े बराबर हों
देख, मेरा दिल दिव्य बुलावा सुन चला आया।

अथवा

सुनो, बात इतनी-सी है
कि दुख को विदा किया हर्ष ने
बड़े परिश्रम के बाद ही पहुँच पाया मैं वहाँ–
सुनो, बात इतनी-सी है।

शिष्यों अथवा बच्चों को वे हमेशा यही समझाया करते कि बेकार मत बैठो, कुछ न कुछ करते रहो। बेकार बैठने वाले से ख़ुदा कभी खुश नहीं रहता और काम करते रहने से अवश्य लाभ होता है। परिश्रम का फल देने वाला स्वयं परमेश्वर है। साधना की विभिन्न अवस्थाओं को पार कर ज्ञान को प्राप्त करने वाले मीर व्यावहारिक जीवन में भी वैसे ही सावधान सतर्क रहते जैसे सीमा पर चौकसी करता हुआ कोई सिपाही। अकर्मण्यता को उन्होंने पूरी तरह से त्याग दिया था। गाय-बैल पालने में उनकी बड़ी रुचि थी। इसीलिये शायद उनका स्वभाव भी इतना स्नेहपूर्ण था। जीवन के अंतिम दिनों तक वे बीस-तीस गायों और जोड़ी-भर बैलों को बराबर पालते रहे। यह जहाँ उनकी व्यस्तता का एक हेतु था वहाँ आय का एक साधन भी। हालांकि उनके

बच्चे समझदार और जवान हो गये थे, मगर वे उन पर सारा बोझ नहीं डालना चाहते थे। वे पशुओं की स्वयं ही देखभाल करने के अभ्यस्त हो गये थे। रात को जब वे ईश्वर का स्मरण करने के लिये उठते, तभी गोशाला में भी जाकर मवेशियों को थपथपाते-सहलाते और देख आते कि कहीं कोई ऐसी गाय तो नहीं जिसने घास न खायी हो या किसी गाय को कोई कष्ट तो नहीं, और तदनुसार उपाय भी करते। जाड़ों की रातों में, जब लोग घरों के भीतर ही रहते है, मीर कहीं बाहर जाकर घूम आते। हर साल वे दो-चार कंबल भी बुन लेते। वृद्धावस्था में भी, जब वे अधिक परिश्रम करने के योग्य नहीं रह गये थे, वे मुट्ठी में गाचिनी मिट्टी भर कर उंगलियों से उसे मसलते रहते, और अगर गाचिनी उपलब्ध न हो तो मिट्टी या फिर राख को ही मलते। इस अभ्यास को उन्होंने लगातार बीस वर्षों तक जारी रखा। इसके परिणामस्वरूप उनके अंगूठे और बीच की उंगली का मांस घिस गया था। गाचिनी या मिट्टी को मसलने के पीछे क्या रहस्य था, यह ज्ञात नहीं, किंतु इतना स्पष्ट है कि यह भी उनकी साधना का ही एक अंग था। उन्हें किसी विशेष नशीली वस्तु की लत नहीं थी जैसी कि आम तौर पर ढोंगी फ़कीरों को हुआ करती है। चरस को तो उन्होंने कभी हाथ भी न लगाया। हाँ, तंबाकू वे ज़रूर पीते थे। पर ऐसा भी नहीं कि हुक्का हरदम हाथ में लिये बैठे रहें। बस दो-चार कश लगाते और हुक्के को एक तरफ़ रख देते।

समद मीर के पास बैठने पर अफ़लातून की यह उक्ति याद आ जाती कि बिना मतलब शब्दों का प्रयोग करना रुग्ण आत्मा का लक्षण है। इस बात को उन्होंने व्यावहारिक रूप से देखा-परखा था। इसीलिये वे धीरे-धीरे, सोच-समझ कर और ज़रूरत के वक़्त ही बोलते। फ़िज़ूल की बातों पर वे न तो कोई ध्यान देते न स्वयं ऐसी कोई बात करते।

जवानी के दिनों में वे खूब जमकर खेती-बाड़ी करते थे; किसी को अपने से आगे निकलने न देते। उनके लिये काम ही पूजा था, इसलिये वे परिश्रम से कभी पीछे न हटे। बढ़ई की सहायता करने वाले मज़दूर का काम करने तक से वे कभी हिचकिचाये नहीं। और जब इस तरह की मज़दूरी से पूरा नहीं पड़ा तो उन्होंने आरीकशी का काम शुरू किया। कमरतोड़ मेहनत करते हुए उन्होंने ज़िंदगी गुज़ारी, कभी आराम से नहीं बैठे।

किताबी शिक्षा उन्होंने प्राप्त नहीं की थी, 'अलफ़-बे'[८] तक से वे अनजान थे। किंतु दिन-प्रतिदिन के जीवन ने उन्हें इतना कुछ सिखा दिया था कि लोग आश्चर्य में पड़ जाते। उनके सामने अगर कोई व्यक्ति कोई मसनवी, मौलाना रूमी की कोई कृति, पंदनामा अत्तार, गुलिस्तान अथवा बोस्तान पढ़ता तो वे तुरंत उनमें आये पद्यों की ऐसी व्याख्या करते कि सभी बारीकियाँ उभरकर सामने आ जातीं और पढ़ने वाला अपने अज्ञान के बोध से गर्दन झुका लेता। अगर कोई क़ुरान शरीफ़ का पाठ कर रहा होता और उससे क़िरआत (उच्चारण) में कोई भूल हो जाती तो वे उसे तत्काल टोकते और कहते: "अरे भाई, ठीक से तो पढ़ो। क़िरआत में तुमने ग़लती की है। इल्हामी किताब पढ़ते वक्त एहतियात से काम लेना चाहिये। कलामे अल्लाह पढ़ने में किसी जानकार से हिदायत लेना ज़रूरी है।"

किसी की बात को काटना या किसी से डांट-डपट करना उन्हें भाता न था। वे स्वयं शिष्ट थे और हरेक से शिष्टतापूर्वक व्यवहार करने का आग्रह करते थे। "किसी से भी ऊँचे स्वर में बोलना उचित नहीं। नम्रता से पत्थर भी मोम बन जाता है।" किसी से अगर उन्हें कुछ कहना होता तो बड़ी विनम्रता और शिष्टता से उसे समझाते। बुरा कहना और बुरा चाहना, यह उनके स्वभाव में न था। किसी की बढ़ती देखकर उनका दिल खिल उठता। उनका कहना था कि ईर्ष्या करने वाले की खुद ही दृष्टि संकुचित हो जाती है। ईष्या, घृणा, मात्सर्य सबको उन्होंने परे कर दिया था। यही कारण है कि उन्हें मानने वालों में हर धर्म और मत के लोग थे। हिंदू हों या मुसलमान, सभी उनसे प्यार करते थे, उनके प्रति श्रद्धा रखते थे। कितने ही हिंदुओं के उनके और उनके घर के लोगों के साथ पारिवारिक संबंध थे, आना-जाना था। कृमशेर में रहने वाले हिंदू तो उनके घर को अपना ही घर समझते थे। किसी भी चीज़ की ज़रूरत आ पड़ने पर वे दौड़कर उनके पास चले जाते– और कभी निराश नहीं लौटते। सच तो यह है कि सूफ़ी-संतों की महफ़िलें भाईचारे की महिफ़लें हुआ करती थीं। 'ऋषियों'[९] के बाद सूफ़ी ही ऐसे थे जिन्होंने हमारी संस्कृति को समृद्ध किया है। आजकल मंच पर चढ़कर जिन बातों का खूब ढिंढोरा पीटा जाता है उन्हें हमारे बुज़ुर्ग व्यावहारिक रूप दे

८. अक्षरज्ञान। ९. कश्मीर के मुसलमान 'ऋषि' सम्प्रदाय से तात्पर्य है।

चुके थे। सत्ताधीशों और राजनीतिज्ञों ने तो हमारी समन्वित संस्कृति को भारी क्षति पहुँचायी है। अपना स्वार्थ साधने के लिये ये लोग बातों को उलट-पुलट और लोगों की भावनाओं से खिलवाड़ करते आये है। 'ऋषियों' और सूफ़ियों का आंदोलन मूल रूप से मानव-मैत्री के सार्वभौम मूल्यों से संबंधित आंदोलन रहा है, जबकि राजनीति कभी एक धुरी पर स्थिर नहीं रही है। समद मीर एक व्यक्ति ही नहीं, एक संस्था थे जिन्होंने अपने व्यवहार और अपने काव्य द्वारा मानववादी मूल्यों को बढ़ावा दिया है। ये मूल्य उन्हें दाय में प्राप्त हुए थे। अतः उनके काव्य को एक ऐसा संगम कहा जा सकता है जिसमें अनेक नदियों का जल मिलकर एकाकार हो जाता है और एक लहराते-गरजते समुद्र का रूप ग्रहण कर लेता है।

मीर अच्छा गाना सुनने के शौक़ीन थे, लेकिन उन्हें सूफ़ियाना कलाम ही ज़्यादा पसंद था। अगर गाना उन्हें पसंद आ जाता तो वे महफ़िल में रुक जाते और तन्मय होकर सुनने लगते, अन्यथा वे चुपचाप महफ़िल से उठ जाते और अपने काम पर चल देते। शम्स फ़क़ीर[10] का काव्य उन्हें बहुत अच्छा लगता था। शायद इसलिये कि उसमें प्राप्ति की कामना ही नहीं, तृप्ति का आनंद भी छलकता नज़र आता है। "वे तो पहुंचे हुए थे," मीर कहा करते "पर मुझे अभी कई मंज़िलें तय करनी है।" स्वरचित गीतों का गायन भी वे सुना करते, पर अगर गायक से ज़रा भी भूल हुई तो उनकी भवें तन जातीं। समझने वाले समझ जाते कि गाने वाले से ज़रूर कहीं कोई त्रुटि हुई है।

नफ़ासत और सफ़ाई को वे बहुत पसंद करते थे। जहाँ बैठते वहाँ घास के एक तिनके का होना भी उन्हें अखरता था। मैल की बात क्या, कपड़े में अगर एक सिलवट भी हो तो उन्हें बुरा लगता। कपड़े वे सीधे-साधे ही पहनते; अलबत्ता कुछ मंहगे किस्म के – ख़ासकर वृद्धावस्था में। फिरन उनकी वेशभूषा का एक अभिन्न अंग था जिसे पहनना उन्होंने कभी छोड़ा नहीं। वे कोट और वास्कट भी पहना करते, ओर जाड़ों में कश्मीरी ऊनी लबादा। सलवार भी उन्हें पसंद थी। सफ़ेद कपड़े पहनना उन्हें अच्छा लगता था।

---

१०. १९वीं शताब्दी के एक प्रसिद्ध कश्मीरी सूफ़ी कवि।

जवानी के दिनों में वे पैरों में कश्मीरी जूती पहन लेते, बुढ़ापे में गुरगाबी।[११] युवावस्था में फिरन के ऊपर एक सफेद चादर ओढ़ लेते, और हैसियत के कुछ ठीक होने पर कंधों पर रफ़्ल[१२] का एक शाल भी रखते।

मीर मझोले क़द के थे। दाढ़ी में ख़त लगाते और गुच्छे जैसी थोड़ी-सी मूंछे रखते थे। सूत, दो-सूत बाल रखते, पर अक्सर सिर घुटा लेते। चेहरा उनका लंबा था और आंखों में जैसे कोई चुंबक था।

उनकी दृष्टि मनुष्य को जैसे बांध लेती थी। माथा चौड़ा था और ठुड्डी लंबी। जीवन के अंतिम वर्षों में उनके माथे पर बल पड़ गये थे और चेहरे की झुर्रियों ने उनके व्यक्तित्व को प्रभावशाली बना दिया था। देखने में वे साधारण आदमियों से अलग एक दार्शनिक जैसे लगते थे। उनकी खुमार से भरी लाल आँखों को देखकर लगता था कि उनकी गहराइयों में अनेक रहस्य छिपे हैं। उनकी ओर देखते ही प्रतीत होता था कि वे पहुँचे हुए हैं।

आख़िरी उम्र में जाने किस कारण से समद मीर को एक और गुरु धारण करना पड़ा और इसके लिये उन्होंने रमज़ान बट का दामन थामा। रमज़ान बट अन्यूडरा गाँव के रहने वाले थे और उस्ताद हबीब और उस्ताद ख़ालिक की ही तरह सूफ़ियों के कुब्रवी संप्रदाय से संबंध रखते थे। समद मीर अंतिम दिनों तक रमज़ान बट के शिष्यत्व में रहे।

उनके मित्रों में माधवराम के अलावा मुहीउद्दीन बट भी शामिल थे। मुहीउद्दीन बट नंबलहार गाँव के मुकदम थे, लेकिन मीर के मित्र और मानने वाले थे माधवराम की मृत्यु के बाद मीर सलाह-मशविरे के लिये अक्सर मुहीउद्दीन बट के पास ही जाते। कहने का आशय यह है कि ये दोनों जीवन भर एक-दूसरे को अपने राज़ बताते रहे। दोनों अशिक्षित थे लेकिन समझदारी उनमें ऐसी थी कि बड़े-बड़े उनसे सम्मति लेने आते। अपनी मृत्यु के कुछ समय पहले मीर ने मुहीउद्दीन को बताया कि वे उनके मरने के बाद आठ वर्षों तक जीवित रहेंगे। और हुआ भी ऐसा ही, मीर की मृत्यु के आठ वर्ष बाद ही मुहीउद्दीन पर ख़ुदा की रहमत हुई। आजकल के लोग शायद इस पर यक़ीन नहीं करेंगे, लेकिन यह बात बिल्कुल सच है और इसके अनेक प्रत्यक्षदर्शी आज भी मौजूद है।

---

११. तस्मों के बग़ैर एक प्रकार का खुला जूता।

१२. एक विशेष प्रकार का ऊनी कपड़ा जो शाल बनाने के काम आता है।

मीर शहर (श्रीनगर) कम ही जाया करते, पर जब जाते तो सफ़ाकदल के रहीम ऋषि या अमीराकदल के अहद (अहमद) सूफ़ी के यहाँ ही ठहरते। इन दोनों व्यक्तियों से उनके बड़े प्रगाढ़ संबंध थे। पर इसका मतलब यह नहीं कि इन दो के अलावा श्रीनगर में उनका और कोई मानने वाला ही न था। सच तो यह है कि उनको मानने वालों की संख्या इतनी अधिक थी कि उनकी गिनती करना मुश्किल था। श्रीनगर ही नहीं उसके सब उपनगरों में भी उनको चाहने वाले बहुतेरे थे जो उनके श्रीनगर आते ही उनके पास हाज़िर हो जाते थे। अनुयायियों का मंडल इतना विस्तृत होने के बावजूद मीर को कभी ज़रा भी अहंकार नहीं हुआ। जो भी अनुयायी उनके पास आता, पात्रता के अनुसार अपनी झोली भर लेता।

समद मीर के बहुत सारे शिष्य थे जिनमें कई आज भी जीवित हैं। इनमें से अहमद बेग, ग़ुलाम नबी कावडारी, ग़ुल जान, रमज़ान जू, अहमद बंगरू, हाजी अहमद सूफ़ी, अली मुहम्मद सूफ़ी और अब्दुल रहीम वानी उनके काफ़ी निकट थे। अहमद बेग उनके दामाद थे, जो कविता भी करते थे। शिष्यों में उनके अपने पुत्र 'आसी' इब्न समद मीर भी शामिल थे। 'आसी' एक अच्छे कवि थे किंतु उनकी असमय में ही मृत्यु हो गयी। समद मीर के दो बेटे थे और एक बेटी। बेटी की शादी उन्होंने कमशेर में की थी। उनके बड़े बेटे ग़ुलाम रसूल एक पटवारी हैं और उनके पुत्र शकील अहमद भी कविता करते हैं।

स्वयं अशिक्षित होने पर भी मीर शिक्षा के महत्त्व को जानते थे। अपने बच्चों को उन्होंने अपने-अपने भाग्य के अनुसार शिक्षा दिलाने की व्यवस्था भी की थी – उतनी शिक्षा जिससे वे अपना निर्वाह करने के योग्य बन सकें। छोटे बेटे ग़ुलाम मीर 'आसी' परिवहन विभाग में एक क्लर्क थे। पर चूंकि मीर की ज़्यादा खर्चा बर्दाश्त करने की हैसियत न थी, अतः अपने किसी पुत्र को वे कॉलेज न भेज सके। उन दिनों बच्चों को मैट्रिक तक पढ़ाना भी बड़ी बात समझी जाती थी।

९ जनवरी १९५६ को सुबह के चार बजे समद मीर हाथ का सिरहाना बनाये ख़ुदा को प्यारे हो गये। मन से तो वे मृत्यु के लिये पहले ही तैयार थे। उन्होंने कहा भी तो है :

सन् चौदह में भाग्य से मेरे जन्म की घड़ी थी
और मैं अकेला ही दुनिया में चला आया

अब तो मैंने जाने की तैयारी शुरू कर दी है
वहाँ जहाँ मेरा मायका है।

समद मीर ने स्वयं ही यह वसीयत कर ली थी कि उन्हें 'अगर' नाम के गाँव में पिता के पास ही दफ़नाया जाए। 'अगर' श्रीनगर-रायथन मार्ग के पंद्रहवें मील पर चिनारों का एक झुरमुट है। यह स्थान बड़ा ही रम्य है। चिनारों के इस झुरमुट के बीच एक जलाशय के किनारे उनकी कब्र है जिसके समीप ही एक झोपड़ी खड़ी है। कब्र पर जो पत्थर लगा है उस पर मीर की मृत्यु की तिथि अंकित है। मज़ार के अहाते के चारों ओर कंटीले तार का बाड़ा लगा है।

मीर के मज़ार को अब एक बाग़ की तरह सजाया गया है। उन्होंने स्वयं ही तो कहा था :

तुम्हारे नयन अगर श्रवणमय हो जायें
तो हर रात तुम्हारे लिये मुक्ति की रात होगी
मगर ऐ साहिब होश (सचेत साधक)
तुम्हें होंठों को सी लेना पड़ेगा

मज़ार पर हर वर्ष शरद ऋतु में भंडार होता है, गरमियों में मेला लगता है। मेले के अवसर पर मुशायरा होता है और गाने-बजाने की महफ़िलें भी लगती हैं। इनमें शामिल होने के लिये आस-पास के गाँवों के लोगों के अलावा समद मीर के अनुयायी और उनके शिष्य भी उमड़ पड़ते हैं। वे सब के सब जिन्हें उनका बुलावा आया हो वहाँ एकत्रित हो जाते हैं :

अरे ओ खुशकिस्मत सुन, मेरा आह्वान सुन
मैं कहता रहा, पर तूने कभी ध्यान नहीं दिया

और जिन लोगों ने उनका आह्वान सुना, उनके बारे में स्वयं मीर का कहना है :

कान से सुनने वाले हाथ मलने लग जाते हैं
मैं कहता रहा, पर तूने भी कभी ध्यान नहीं दिया

समद मीर की मृत्यु से कश्मीरी भाषा को भारी क्षति पहुंची और कश्मीर की समन्वित संस्कृति का एक प्रकाशस्तंभ बुझ गया। उन जैसा कवि किसी भी भाषा में बार-बार जन्म नहीं लेता।

जिये कैसे वह जिसका तुमने होश छीन लिया हो
मुझसे तो तुम दूर चले गये हो
अब कौन है जो समद मीर को यहाँ पहचाने
जलाकर राख कर दिया है मुझे तो
क्या करूँ इसमें मेरा ही दोष है

समद मीर के इस गीतांश में खाली दावा नहीं, एक सच्चाई है। ऐसी सच्चाई जो काव्य-सत्य को तो अपने अंक में भरती ही है, साथ ही उन लोगों की बेमुरव्वती की ओर भी इशारा करती है जो कश्मीरी भाषा के दर्दमंद होने का दम भरते हैं। छब्बीस वर्ष हो गये हैं अब उनकी मृत्यु को, पर इन छब्बीस वर्षों में क्या उन पर छः लेख भी छपे हैं ? ले-देकर एक कलचरल अकादेमी[१३] ने उनका संपूर्ण कृतित्व प्रकाशित किया है, अन्यथा आज उनका काव्य भी हमें उपलब्ध न होता। समद मीर ही क्या कशमीरी के सभी सूफ़ी कवियों के साथ जिन्होंने तूफ़ानी हवाओं में कश्मीरी भाषा का चिराग़ जलाये रखा और हमारे मनोमस्तिष्क में अपने सतरंगे अनुभवों के फूल बिखेर दिये, ऐसा ही हुआ है। किसी ने अगर कुछ लिखा भी तो दो-चार शब्दों में उसे निबटा दिया, जिससे गुणों और अवगुणों के विवेचन में कोई सहायता न मिल सकी।

समद मीर सूफ़ी भी थे और कवि भी – कोई ऐसे-वैसे कवि नहीं एक परिपूर्ण और परिपक्व कवि जिनकी कल्पना चेतना की सीमाओं को पार करती हुई अरूप को शब्दों में रूपायित कर लेती थी। यह तय करना कठिन है कि वे अधिक महान कवि थे या अधिक महान सूफ़ी। अक्सर ये दोनों पक्ष उनके व्यक्तित्व में संतुलित नज़र आते हैं। पर हाँ, कभी-कभी कवि समद मीर का पलड़ा भारी हो जाता है और तब पायल की तरह रुनझुन करते गीत जन्म लेते हैं जिनके सामने परियों का संगीत भी फीका पड़ जाता है :

---

१३. जम्मू-कश्मीर राज्य कल्चरल अकादेमी।

मेरे प्यार के चोर ने रिस के मारे
मुझे भुला दिया
अभी तो वह पास था मेरे
एक हौल-सा उठकर मेरे दिल को चूर-चूर कर गया
अभी तो वह पास था मेरे
यौवनमाते उस प्रिय को मैंने अपनी बाँहों में दुलराया-झुलाया
पूछूँगी उससे अब कहाँ गया वह मुझे छोड़ कर
अभी तो पास था मेरे

कैसे जिये वह आग ने जिसकी वसा तक जला डाली हो ?
उसने कभी मेरी ख़बर भी न ली
औरों के पास गया दीवाना, मुझे दाँव पर लगाकर
उसने कभी मेरी ख़बर भी न ली
तुमने जो टेढ़ी नज़र से देखा तो मैं दर्द से तड़प उठी
टपका रही हूँ मैं दिल का खून प्यार में डूबी आँखों से
उसने कभी मेरी ख़बर भी न ली

मीर की कविता की एक विशेषता यह है कि हालांकि उसमें आध्यात्मिक अनुभव की अभिव्यक्ति हुई है, लेकिन प्रेम-गीतों के जो रसिक हैं वे भी उनका आनंद लेते हैं। कवि का स्वर उन्हें अपने ही हृदय का स्वर लगता है। उनकी कविता कभी एकरसता से ग्रस्त नहीं हुई। पहली दृष्टि में जो गीत एक प्रेम-गीत लगता है थोड़ा आगे चलकर वही ऐसा मोड़ लेता है कि पूरा गीत किसी विशिष्ट अनुभूति की अभिव्यक्ति प्रतीत होने लग पड़ता है। एक ऐसी सतरंगी अनुभूति की जो पाठक अथवा श्रोता को मदहोशी के आलम में पहुँचा देती है :

फ़ना[१४] की शंका छोड़ तू देख बक़ा[१५] क्या होती है
उससे भी आगे तुझे दिखायी देगा वह शहंशाह
मैंने और उसने कुछ एक-जैसी बातें कीं
अभी तो वह पास था मेरे !

१४. मृत्यु १५. अमरता

इस गीत की प्रथम पंक्ति एक लौकिक प्रेमी के दूर चले जाने का आभास देती है, पर मीर ने गीत को अंत मे ऐसा मोड़ दिया है कि वह जो एक लौकिक अनुभव है एक रहस्यानुभव में बदल गया है। यह अनुभव लौकिक धरातल से ऊपर उठकर आकाश में उड़ान भरता है। हम जिस पद्यांश की चर्चा कर रहे हैं उसमें तृप्ति का आनंद छलकता है। कवि तलाश की मंज़िल को पार कर तृप्ति की अवस्था में पहुँच गया है। द्वैत के सारे परदे छिन्न-विच्छिन्न हो गये हैं और अब दोनों एक हो गये हैं। सूफ़ी समद मीर वही दर्शाते हैं जो वह चरम सत्ता विभिन्न रूप धारण करके दर्शाती है। उनकी विशेषता इस बात में है कि रहस्यानुभव को उन्होंने काव्य के साँचे में इस तरह से ढाला है कि थोड़े-से शब्दों में एक लंबी यात्रा का वर्णन हो गया है और काव्यात्मकता को ज़रा भी क्षति नहीं पहुँची है। आदि से अंत तक सारा गीत कण-कण में सुगंध बिखेरता फूलों के एक गुच्छ जैसा है।

चीनी कवि ची काङ् ने लिखा है :

आकाश में उड़ते हँसों को
घर की ओर जाते देख
मेरी भी दृष्टि
उनके पीछे-पीछे जाने लगती है

अगर हम समद मीर की कविता का अच्छी तरह से अवलोकन करें तो पायेंगे कि उनकी भी दृष्टि सारी उम्र एक अकेले सत्य की तलाश करती रही है और अंततः उस तक पहुँच भी गयी है। यह अकेला सत्य समद मीर के सामने रूप बदल-बदल कर आता रहा है। अंत में उन्हें यह बोध हुआ कि इस परम सत्य को देखने से अधिक चीन्हना, घेरना, गरेबाँ से पकड़ लेना होता है। तभी तो उन्हें कहना पड़ा :

अंदर की दुनिया को पाने के लिये
अपने आपको मिटा दे
अपने आपको जान—
मर कर फिर कौन तुझे मारेगा ?
यदि जानता है तू रहस्य की बातों को तो ध्यान रख
अपने आपको जान—
मर कर फिर कौन तुझे मारेगा ?

जिसने अपने आपको पहचान लिया, जिसने अपने आपकी वास्तविकता को जान लिया, उसे फिर मरने का डर कहाँ रहता है। जन्म और मरण का उसके लिये कोई अर्थ नहीं रह जाता। यह वह अवस्था है जिसके बारे में लल्लेश्वरी कहती हैं :

एक तपस्विनी के रूप में मैं संसार में आयी
बोध के प्रकाश में मैंने सहज को पा लिया
अब मेरे लिये समान है जीवन भी और मरण भी
न मुझे किसी का शोक होगा, न किसी को मेरा शोक
मैं मरूँ तो अच्छा, जियूँ तो वह भी अच्छा !

सच तो यह है कि आत्मज्ञान हो जाने पर मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है। मृत्यु के भय का अंत कैसे होता है इसकी ओर संकेत करते हुए समद मीर प्रश्न करते हैं :

जो अपने आपको भूल गया हो
जान ले वही मर गया है
उससे फिर हमारा क्या लेना-देना ?
किसी ने तुझे बताया नहीं ?

काव्यात्मक उत्कृष्टता और बारीकियों को बरकरार रखते हुए इस पद्यांश में थोड़े-से शब्दों में एक बड़ी-सी बात कही गयी है, जिसकी व्याख्या में बहुत समय लग सकता है। "किसी ने तुझे बताया नहीं ?" – गीत की यह टेक विशेष रूप से ध्यातव्य है जिसने वास्तविकता के बोध और पहचान की अनुभूति को और भी तीव्र बना दिया है। साथ ही यह सवाल भी उठाया गया है कि क्या कोई ऐसा व्यक्ति नहीं जो जिज्ञासुओं को इस सत्य का बोध करा सकता हो। बात कहने के बाद इस तरह सवाल पूछने के अंदाज़ ने इस पद्यांश को एक नया मोड़, एक नया आयाम प्रदान किया है। समद मीर की कला की यही तो विशेषता है कि वह पाठक अथवा श्रोता के मन में एक तड़प जगा देती है जिससे उसके रोम-रोम में उथल-पुथल और बेचैनी पैदा होती है, और वह चिंतन की सीमा को लाँघ कर बोध के लक्ष्य की ओर बढ़ता है। शर्त यही है कि उसमें इसकी पात्रता हो। इस प्रकार के प्रश्न और भी कई स्थानों पर किये गये हैं। गहराई में पैठने वाले के लिये

तो प्रश्न ही उत्तर बन जाता है :

वाणी जहाँ से आयी है
वहाँ का रास्ता कौन जानता है ?
बताओ तो इसके माने क्या हैं ?
वहाँ पहुँचने पर मैं भी संशय में पड़ गया
बताओ तो इसके माने क्या हैं ?

यहाँ एक ऐसी सच्चाई की ओर संकेत किया गया है जिसका उल्लेख पवित्र ग्रंथों में भी मिलता है। उदाहरण के लिये, बाइबल का कथन है :

"सब से पहले था शब्द, और शब्द ईश्वर के पास था, और शब्द ही ईश्वर था।"

उपनिषदों में भी कहा गया है :

"वाग्वै परम ब्रह्म !"

वास्तव में वाणी ज्ञान की पहली सीढ़ी है। वाणी न होती तो हम एक-दूसरे के अनुभवों का लाभ नहीं उठा सकते, न हममें उसे जानने की पात्रता अथवा क्षमता आती। वाणी न होती तो मनुष्य को पशु जाति में ही गिना जाता।

भारतीय सौंदर्यशास्त्र के अनुसार कला में रस का होना आवश्यक है– वह चाहे काव्यकला हो अथवा संगीत, मूर्ति शिल्प हो अथवा चित्रकला। सब में जो पहला रस है वह है आध्यात्मिक उन्मेष, एक आंतरिक भाव अथवा अनुभव जो संपूर्ण कृति में व्याप्त होता है, जिसे हम अनुभव तो कर सकते हैं, पर देख नहीं सकते। कृति के बाह्य रूपाकार से रस का कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं। वह तो कलाकृति में पैठने से निष्पन्न होता है। वह एक मानसिक आनंद की अनुभूति भी है और उसकी अभिव्यंजना भी। इस आनंद को तभी जाना जा सकता है जब मनुष्य का मानसिक स्तर उसके अनुरूप हो।

इस आंतरिक आनंद अथवा रस को किसी कलाकृति में बाहर से नहीं भरा जा सकता। यह तो गहरे अध्ययन अथवा गहन अनुभव से उत्पन्न होता है। रस की यह संपदा हरेक के भाग में आती हो, ऐसी बात नहीं। लल द्यद की ही भाँति समद मीर की कविता भी इस आंतरिक अथवा आत्मिक रस से परिपूर्ण है और यह रस काव्य-बोध की प्रक्रिया में निहित है :

उस अदृश्य की आवाज़ मेरे कानों में पड़ी
वह क्या था जो उसने मुझसे कहा ?
उसका अर्थ मैं कभी समझा और कभी
समझ ही न पाया
वह क्या था जो उसने मुझसे कहा ?
ऐसा लगा जैसे हरे पत्तों पर दर्द की चिनगारी पड़ी हो
पर करनी का फल क्या चुक जायेगा ?
जीवन और मरण ने मुझसे चौसर की बाज़ी जीत ली
वह क्या था जो उसने मुझसे कहा ?

सात-सात स्थानों पर निशान लगा कर भी
मैं अपने जन्मस्थल को फिर-फिर भूल गया
जिस रहस्य को समद मीर ने अपनी आँखों से देखा
उसे बतलाना बहुत ही मुश्किल है।

चिंता मत कर
वह न कहीं ऊपर है न नीचे
उसने तो पूरी शान से
मन के अंदर डेरा डाल रखा है
और रहस्य की बात सुन :
वह और मैं उसी तरह एक है
जैसे माँस और नाखून
अहं को मिटा कर ही तू
मनुष्य की प्रकृति को प्राप्त कर सकेगा

कान से मैंने बात सुनी
और प्राण में उसे उतार कर रखा
किससे कहूँ मैंने अपना दिन और रात गंवा दिया
सात दरवाज़े बंद कर मैंने उसे भीतर ही भीतर छिपा लिया

किससे कहूँ मैंने अपना दिन और रात गंवा दिया
उस अरूप ने मुझे कैसे-कैसे रूप दिखाये
ऐ समद मीर, इन जलवों की थाह ले
वहाँ तो बुद्धि की पहुँच ही नहीं है

अनेकरूपता में एकता को पाने के इस आह्वान का वहदत-उल-वजूद अथवा अद्वैत-वेदांत नाम पड़ा। ये दोनों दार्शनिक निकाय विश्व के बारे में एक ही दृष्टिकोण के दो रूप हैं। सृष्टि और जीव संबंधी अंतर्ज्ञानवादी परिकल्पना का ये आधार हैं। दोनों चिंतन-धाराओं के अनुसार सृष्टि का मूल उद्गम है सत्य। यही सत्य विश्व के रूप में प्रकट हुआ है। जो अनेकरूपता हमारी आँखों के सामने क्रीड़ायमान है, वह इसी सत्य का विभिन्न रूपों में प्रकाशन है। इन रूपों को देखकर समद मीर का हृदय आनंद विभोर हो उठता है और वे कह उठते हैं :

शून्य ही धरती और आकाश है
शून्य ही भाग्य-फलक है, (और भाग्य लिपि लिखने वाली)
कलम-दवात है
वह शून्य है तो मैं किसको नमन करूँ ?
जब से मैंने शून्य की वास्तविकता को जान लिया
तभी से मैं यह कहता आ रहा हूँ

इससे पूर्व लल्लेश्वरी ने अव्यक्त को शून्य का परिधान पहनाते हुए कहा था :

हम अविराम आते रहे हैं और अविराम ही जाते भी रहे हैं
रात हो या दिन हमें बस चलते ही रहना है
जहाँ से आये थे हमें वहीं चले जाना है
(शून्य से शून्य तक हमारी यह यात्रा है)
पर सब अगर कुछ नहीं है, कुछ नहीं है, कुछ नहीं है
तो यह "कुछ" कहाँ से आया ?

अथवा

गुरु से मैंने हज़ार बार पूछा
वह जो अनाम है उसका क्या नाम है ?

पूछते-पूछते मैं थक-हार गयी
"कुछ नहीं" में से "कुछ" उत्पन्न हुआ तो कैसे ?

लल द्यद ने बात को सांकेतिक रूप से कहा है, पर समद मीर ने तो उसे विस्तार से कह डाला है और शून्य में से सृष्टि की, "कुछ नहीं" में से "कुछ" के उत्पन्न होने की बात कहकर 'अनलहक' की प्रकार लगायी है जिसके लिये मंसूर को सूली पर चढ़ाया गया था: "मैं शून्य में हूँ और शून्य मुझ में !" 'अनलहक' की व्याख्या करते हुए प्रो० निकलसन मौलाना रूमी के अपने अंग्रेज़ी अनुवाद के छठे भाग में लिखते हैं :

"मौलाना जलालुद्दीन रूमी के अनुसार 'अनलहक' अहं की चरमावस्था है। जिस तरह से मधुमक्खी शहद में अपने पंख हिला-डुला नहीं सकती, उसी तरह से भाव की दशा में कोई सूफ़ी साधक यह नहीं कह सकता कि "मैं बंदा हूँ" क्योंकि उसमें द्वैत की भावना निहित है– खुदा अलग है और बंदा अलग। यह अहंकार की अवस्था है – ईश्वर के अस्तित्व के आगे अपने अलग अस्तित्व की घोषणा।"

समद मीर की भाँति भक्त कबीर ने 'अनहलक' नहीं कहा, किंतु उनके इस पद में इसी तथ्य को कहा गया है :

निरगुण आगे सरगुण नाचे
बाजे सोहंग तूरा

छांदोग्य उपनिषद् के एक सूत्र में इसी बात को यों प्रकट किया गया है: "यह सारी अनेकरूपता नामों और शब्दों की माया है।"

हज़रत मुहीउद्दीन-इब्न-अरबी का दृष्टिकोण, जो 'हमअ-ओस्त' के दर्शन के नाम से सूफ़ी जगत में लोकप्रिय हुआ, इस धारणा से बहुत अधिक भिन्न नहीं है। ये एक ही तस्वीर के दो रूप हैं, एक ही सत्य की दो व्याख्याएँ। अरूप के विभिन्न रूपों को देखकर समद मीर आनंदित हो उठते थे और अपनी सुध-बुध भूल जाते थे। वे सोचते थे कि रूपों की इस अनेकता में मैं उसे किस रूप में पुकारूँ, किस रूप में उसका स्मरण करूँ, वर्णन करूँ, पहचानूँ ! स्वच्छ काल के शब्दों में "ये सब एक ही शृंखला की कड़ियाँ हैं।" किसी एक रूप को पकड़ने का अर्थ था भटकना – और इस बारे में समद मीर काफ़ी सतर्क थे। उनकी अवलोकन शक्ति प्रखर थी, हर चीज़ को वे अपने दिल में अंकित कर लेते थे। अवलोकन के निचोड़ का जब रचनात्मक

आवेग से मेल होता था तो कुछ इस प्रकार के गीत जन्म लेते थे :

शुद्ध चंदन का भी अगर 'अरखल'[१६] का-सा हाल कर दिया जाये तो
ये गुत्थियाँ कभी नहीं सुलझेंगी
वह कौन-सा बुद्धिमान होगा
जो खेलने के लिये माणिक-मोतियों का इस्तेमाल करेगा ?
गीदड़ शिकार करने निकलेगा
तो सभी ताक में रहेंगे
लेकिन शेर के सामने सब चुप ही रहते हैं
बाज़ अगर छोटी-सी चिड़िया को समझाये
तो इसमें कौन-सी शर्म की बात है ?
ये गुत्थियों कभी सुलझेंगी नहीं

रंगमहल के छज्जे पर मेरी जगह है
शून्य जिसका आँगन है
न उसकी कोई नींव है न छत
जहाँ से मुझे बुलावा आ रहा है

ओ री आकाश में उड़ने वाली टिटहरी !
तेरी तो कहीं छाया भी नहीं दिखायी देती
अब तो नीचे की ओर उतर आ
तेरी तो वहाँ जगह नहीं है ओ हारवातिज ![१७]
रंगचिरैया सिर्फ़ उड़ने की लालसा को ही जानती है
अंधा क्या जाने क्या प्रकाश है, क्या छाया ?
कौए के गले में बहुमूल्य माला पहनाना क्या उचित है ?
ओरी तेरे झुमके झूम रहे हैं !

समद मीर के संवेदनशील मन को कोई-कोई दृश्य इतना आकर्षित करता था कि वे उसे अपने हृदय में संजो कर रचना में रूपायित करते थे — वह मिट्टी के बर्तन

---

१६. एक पेड़ जिसे छूने से फफोले पड़ जाते हैं।

१७. मैना के आकार-प्रकार का एक पक्षी विशेष।

बनाता कुम्हार हो या चिड़ियों की चहचहाहट। देखे हुए दृश्य को काव्य का रूप देते हुए वे उसे ऐसे शब्दों में सज्जित करते जो उसके लिये विशेष रूप से उपयुक्त हों। एक कलाकार के कौशल का इसी से पता चलता है कि वह अपने अवलोकन को कहाँ तक अपनी रचना-प्रक्रिया का अंग बनाता है। समद मीर जब पक्षियों का वर्णन करते हैं तो ऐसा लगता है जैसे उन्होंने सारा जीवन पक्षियों के बीच बिताया हो। उनकी कविता में अनेक प्रकार के पक्षियों का वर्णन आया है, जिससे पता चलता है कि प्रकृति के साहचर्य में रहकर उसके रूप कैसे उनके मन में समा गये थे। पक्षियों से उन्हें कुछ ज़्यादा ही प्रेम रहा है। उनका कलरव सुनने में उन्हें बड़ा सुख मिलता था। समद मीर के पक्षी-प्रेम पर मुझे एक बात याद आती है। एक बार जापान में ज़ेन मत को मानने वालों की एक सभा हुई जिसमें इस मत के बहुत से अनुयायियों ने भाग लिया। एक वक्ता महोदय अपना व्याख्यान देने के लिये उठे ही थे कि कहीं से एक मैना उड़ती हुई आयी और आकर खिड़की पर बैठ गयी और चहचहाने लगी। वक्ता महोदय व्याख्यान न देकर मैना की चहचहाहट को सुनने में लग गये। चहचहाने के बाद जब मैना उड़कर चली गयी तो वक्ता महोदय ने कार्यक्रम के ख़त्म होने की घोषणा की। चहचहाहट सुनकर वे स्तब्ध रह गये थे। समद मीर ने भी पक्षियों का गायन सुना है और उनका आनंद लिया है। किंतु समद मीर की विशेषता इस बात में है कि उन्होंने पक्षियों के पंख फड़फड़ाने, उड़ने, गाने-चहचहाने की आवाज़ को अपनी कविता की लड़ी में पिरो दिया है ताकि वे लोग जिन्होंने उन पक्षियों का गाना न सुना हो, उसी तरह से आनंदित हो सकें जिस तरह से स्वयं कवि :

चिमगादड़ ने अपनी दोनों आँखें बंद कर लीं
और छिपा लिया अपने आपको
उलटा लटक गया वह तो
किसी ने तुझे बताया नहीं ?
कस्तूरों, फ़ाख़्ताओं, कबूतरों ने
तोते की जैसी (मीठी) बोली बोली
नन्ही चिरैया ने तब भी उन्हें नसीहत दी
किसी ने तुझे बताया नहीं ?

मक्खी आकर मधुमक्खी से बोली
मुझसे अधिक कौन व्यस्त है ?
मेरे पंख भी तेरे जैसे ही नहीं हैं क्या ?
तुझे मैं अपना हाल क्या बताऊँ ?

धन्य है राजहंस
जिसके सिर से हर बुरी छाया दूर हो गयी है
सभी उसकी सम्मति पूछने आते हैं
ओरी तेरे झुमके झूम रहे हैं।

मीर के इस प्रकार के गीत पढ़ने पर जहाँ उनके सूक्ष्म अवलोकन का पता चलता है, वहाँ कश्मीर का हँसता-खिलखिलाता रूप भी आँखों के सम्मुख आ जाता है और हृदय को जैसे ठंडक पहुँचती है। आत्मिक अनुभवों को व्यक्त करने के साथ-साथ उनकी कविता कश्मीर के सौंदर्य और संस्कृति को भी दर्शाती है। उसमें कश्मीर के सांस्कृतिक जीवन के अनेक ऐसे रूप सुरक्षित हैं जो अब विलुप्त हो रहे हैं।

अच्छी कविता वह है जो देश और काल के बंधनों और सीमाओं से मुक्त हो। ऐसी कविता एक तिलिस्म की तरह है जो हर युग में पाठकों और श्रोताओं पर जादू करता आया है। जादू कर देने की यह क्षमता मीर की कविता में भी है किंतु उनका संपूर्ण काव्य समग्र रूप से इस दायरे में नहीं आता। गोताख़ोर भी जब समुद्र में गोता लगाता है तो हर बार मोती लेकर नहीं आता, मोती के साथ-साथ कभी-कभी मूंगा भी होता है। यह बात हर रचनाकार पर लागू होती है।

अपने एक गीत में मीर ने कहा है :

जब उसने आदम को दुनिया में भेजने की सोची तब मैं बूढ़ा हो चला था
वह रात को आया और
घड़ी भर के लिये हमारे यहाँ रुका
बताओ तो इसके माने क्या है ?

यही बात शम्स तबरीज़ी में इस ढंग से कही गयी है :

जब आलम नहीं था तब में था
जब आदम नहीं था तब मैं था
जब समय नहीं था तब मैं था
मैं तो चिर-पुरातन प्रेमी हूँ

और लल्लेश्वरी ने इसी सच्चाई को यों व्यक्त किया है :

हम थे और हम ही रहेंगे
हम ही विगत युगों से चले आ रहे हैं
शिव सदा ही जन्म-मरण का चक्र चलाते रहेंगे
सूर्य सदा ही उदय और अस्त होता रहेगा

इसी भाव को अहद ज़रगर ने भी अपने प्रसिद्ध गीत "काफ़िर बनकर भी मैंने इकरार किया" में गूंथा है।

इस प्रकार की कविताएँ किसी के कहे की अनुगूंज नहीं। ये उस बोध की अभिव्यक्ति हैं जो सहृदयों को काफी मंज़िलें तय करने के बाद प्राप्त होता है। समद मीर पर बहुत पहले चोरी का इल्ज़ाम लग गया होता यदि वे अक्खड़ किस्म के आदमी नहीं होते। अक्खड़ होने के कारण ही उन्हें किसी ने छुआ तक नहीं। पता नहीं अक्खड़ होने से उन्हें कोई नुक्सान हुआ या नहीं, पर मेरी दृष्टि से उन्हें इसका एक बड़ा लाभ यह हुआ कि उनके अनुभवों की प्रामाणिकता बनी रही। इस प्रामाणिकता ने उनके काव्य को अपना एक अलग रूप प्रदान किया। हालांकि सभी सूफ़ी कवियों ने प्रायः वचुन (गीत) विधा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है, किंतु सभी सूफ़ी कवियों के काव्य की अपनी-अपनी विशिष्ट भंगिमा है, अपनी विशिष्ट भाषा और अपने विशिष्ट प्रयोग हैं। इस प्रकार के सूफ़ी कवियों में समद मीर भी शामिल हैं। उनकी काव्य भाषा अन्य सूफ़ी कवियों से विशेष रूप से भिन्न है। समद मीर ऐसे पहले कवि हैं जिन्होंने मेहनतकश और कामगार की भाषा को साहित्यिक और रचनात्मक रूप प्रदान किया। भूली-बिसरी शब्दावली, जिसे शब्दकोश में स्थान नहीं दिया गया है, उनके काव्य में सृजनात्मक चेतना के अनेक स्तरों सहित दृष्टिगोचर होती है। कश्मीरी किसान और कामगार की भाषा को सृजन की भाषा बनाकर उन्होंने एक ओर तो कश्मीरी भाषा का विस्तार किया तो दूसरी ओर से कश्मीरी कविता में एक नयी

प्रवृत्ति का विकास किया जिसके अंतर्गत घिसे-पिटे शब्दों के स्थान पर ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया जो इससे पहले गद्य या पद्य में कहीं नज़र नहीं आते। समद मीर ने जिस शब्दावली को रचनात्मक भाषा का रूप दिया उसके बारे में पढ़े-लिखे वर्ग के लोग बाद में सचेत हुए; पर समद मीर जैसे संवेदनशील कवि ने उसकी क्षमता को पहले ही पहचान लिया था :

प्रेम के पादाघात ने मुझ बाला को
रास्ते पर लाया
उससे मुझमें लचक आ गयी
आराम से उसने मुझे अपनी बर्तन बनाने की जगह पहुँचाया
और मेरी मिट्टी के ढेर बनाकर रख दिये
मेरे अंदर थोड़ी सी नमी थी
कुम्हार ने सुखाकर उस नमी को दूर कर दिया
पकायी जाने वाली मिट्टी को अलग रखते हुए
लाते ही साफ़ कर लिया गया
दो किस्म की रेत को एक ही बर्तन में
ज़र्रा-ज़र्रा मिलाकर रख दिया गया
पूरी तरह से छानकर कुम्हार ने मुझे फिर
चाक पर चढ़ाया
डंडे की मदद से उसने चाक को घुमाया फिर अपने हाथ से उसने
मुझे आकार दिया
और बादशाह के बरतने योग्य बर्तन बनाये
फिर, जैसी कि प्रथा है,
धागे से उसने मुझे चाक से अलग किया
मेरा निर्माण कर लेने के बाद मुझे चाक से उतारा गया
तभी तो मेरी शान ऐसी निराली है

सीधा-सादा जानकर
तुम मुझे हमेशा टालते रहे

बेकार ही मेरे पाँव थके
तुम्हें तो कभी मेरी याद न आयी
(वहीं है मेरा नैहर, वहीं है)
तराज़ू में तोलकर उसने क्या कुछ दिया
किसने उसका मतलब जाना ?
लकड़ी के ढेर में चूहा घुसा
तो वहाँ उसे खाने को क्या मिला ?
(वहीं है मेरा नैहर, वहीं है)
एक के बाद एक रेतीले किनारों को गिनना है—
मेरी इस मूल समस्या को तो समझो
हर क्षण के बाद अहं में आग लगाना है
(वहीं है मेरा नैहर, वहीं है)

वसंत आया और बढ़इयों को मैंने आश्वासन दिया
लुहारों से समस्या की चर्चा की
संशय त्यागो
तुम्हारे लिये मैं कुल्हाड़ी-दरान्ती-गैंती बनाऊँगा
बताओ तो इसके माने क्या हैं ?
बीज बो लो ओ किसान, हर दिशा में निकल पड़ो !
खेत में केवल पानी और कीचड़ है
मिट्‌टी को टटोलो, गोड़ी करो
बीज खुद ही ज़मीन में चला जायेगा
बताओ तो इसके माने क्या हैं ?
गोड़ी करना छोड़ दो;
अब तो फ़सल पकने का मौसम है
कच्चा-पक्का कुछ भी छिपा नहीं रहेगा
नुक़्ता (रहस्य की बात) अब ख़त्म होने को है
पर यह बात तो किसी-किसी को ही पता चल सकती है
बताओ तो इसके माने क्या हैं ?

तुम चाहे कितना भी धन खर्च करो
पर गीदड़ का सींग, मच्छर की हड्डी
झान का बाल, और वह भी नीले रंग का[१८] –
इस तरह की चीज़ें, कहीं मिल सकती हैं ?
यह तो कर्म ही है जो दो को मिलाता है

ऐसी निर्बाध और उन्मुक्त अभिव्यक्ति, ऐसी शुद्ध और कुआंरी भाषा कश्मीरी में अन्यत्र कहीं दिखायी नहीं देती। इसमें कोई दूसरा कवि समद मीर से स्पर्द्धा तो क्या उनकी समकक्षता भी नहीं कर सकता। इसे पढ़कर ऐसे ही उल्लास और आनंद का अनुभव होता है जैसे किसी बच्चे को कोई प्यारा-सा खिलौना देख लेने पर। मीर की कविता का अध्ययन करने पर इस बात का पता चलता है कि कश्मीरी भाषा कितनी सक्षम और संभावनाओं से युक्त है। यह एक ऐसी बात है जिसकी ओर अभी तक बहुत कम ध्यान दिया गया है।

मीर की कविता अंतर की भाषा है, मन के रहस्यों अथवा आध्यात्मिक अनुभवों की अभिव्यक्ति – जिसे तस्सवुफ़ कहते हैं। तस्सवुफ पहले से ही एक शक्तिशाली विचार-दर्शन रहा है। अपनी पृष्ठभूमि के कारण इसे कश्मीर में पूरी तरह से पनपने और फलने-फूलने का अवसर मिला। कश्मीर में तस्सवुफ़ के प्रसार के लिये महायान बौद्ध मत और शैव दर्शन ने पहले ही ज़मीन तैयार रखी थी। इसके बाद कश्मीर के ऋषि आंदोलन ने इसकी नींव को सुदृढ़ किया। तस्सवुफ़ ने काफ़ी समय पूर्व एक विश्वव्यापी आंदोलन का रूप ले लिया था और इसका उद्देश्य सदा मानवता का पथ प्रशस्त करना, उसकी सेवा करना रहा है। इसके महान आचार्य, रूमी, हाफ़िज़ अत्तार, जामी आदि अपने समय के पहुँचे हुए बुज़ुर्ग थे जिनकी भीतर की आँखें खुल चुकी थीं, जिस नैतिक जीवन दर्शन का प्रचार सूफ़ियों ने किया वह इतना उत्कृष्ट और ऊँचा था कि केवल विचार ही उस तक पहुँच सकता है। उनका विश्वास था कि अच्छाई अपना प्रतिफल आप है। स्वार्थी धर्मध्वजाधारियों की स्वार्थपूर्ण अच्छाई को उन्होंने अस्वीकार किया, क्योंकि वे जो कुछ करते हैं

१८. ऐसी चीज़ें जिनका कोई अस्तित्व नहीं

अपने फ़ायदे और मतलब के लिये करते हैं। सभी बाधाओं और बंधनों को तोड़ तस्सवुफ़ ने हर मनुष्य को इस बात का अहसास कराया कि वह भी उतनी ही आदरणीय और प्रतिष्ठित है जितना कोई दूसरा। तस्सवुफ़ की इस सेवा को सदा याद रखा जाना चाहिये कि मध्ययुग में जब उत्पीड़कों और अत्याचारियों ने मनुष्य को गुलाम बनाकर उसका मनोबल गिरा दिया था तो ये सूफ़ी ही थे जिन्होंने यह आवाज़ उठायी थी कि मनुष्य चिरंतन सत्ता का अंश है, कि मानव-मानव सब समान हैं, जिससे लोगों में फिर से आत्म-विश्वास पैदा हुआ। तस्सवुफ़ उस समय का एकमात्र सहिष्णु जीवन-दर्शन था जब सहिष्णुता को ही दुनिया से निष्कासित कर दिया गया था। मानववादी मूल्यों की प्रतिष्ठा में तस्सवुफ़ की जो भूमिका सारे विश्व में रही है, वही भूमिका कश्मीर में यहाँ के सूफ़ी कवियों, सहृदयों और संतों ने, जिनके अग्रणी लल्लेश्वरी और शेख़ नूरुद्दीन वली थे, निभायी है। कश्मीर की समन्वित संस्कृति को सूफ़ियों की एक मूल्यवान और महत्वपूर्ण देन उनके गीतों की वह महान पूंजी है जो हमें दाय में प्राप्त हुई है, जिससे हम सब को अनुराग है और जिसका शुद्ध स्वर हमारे हृदय के तारों को झंकृत करता है।

समद मीर पूरी तरह से एक रिंद (रसिक) हैं, ज़ाहिद (धर्मोत्साही व्यक्ति) का धर्मोत्साह उन्हें ज़रा भी सुहाता नहीं। यह इसलिये कि ज़ाहिद की साधना-उपासना सकाम है; उसमें स्वार्थ छिपा है जिसकी ओर संकेत करते हुए शेख़ नूरुद्दीन वली ने कहा है :

स्वर्ग के लोभ और नरक के भय से
लोग तेरी उपासना करते हैं, हे देव !

और लल द्यद कहती हैं :

यह देवता तेरा पत्थर है
और देवालय भी पत्थर ही तो है
ऊपर से नीचे तक सब पत्थर ही पत्थर है
मूर्ख पंडित, फिर तू किसकी पूजा करेगा ?
(पूजा ही करनी है तो) मन और पवन को एक कर

"मूर्ख पंडित !" कहकर लल्लेश्वरी ऐसे लोगों को संबोधित करती हैं जो बाहरी आचारों और रीतियों से चिपके हुए हैं, पर जिनके मन का मैल नहीं

धुला है, जिन्होंने प्रकृति को पवन से शुद्ध नहीं किया है। समद मीर को भी ज़ाहिद का आचरण ठीक नहीं लगता, क्योंकि वह अभी अद्वैत की अवस्था तक नहीं पहुँचा; उसे नर और नारी में अंतर दिखायी देता है, आत्मा के स्थान पर काया को प्यार करने में रत है। किंतु मीर जानते हैं वास्तविकता क्या है, उन्हें ज्ञात है यह काया साधन है साध्य नहीं।

नर और मादा एक हैं
ज़ाहिद तू अपनी निबेड़
प्रेमी का तन तो पापोश है—
कह-कह कर भी तुझे याद नहीं रहता ?

बार-बार कहने पर भी ज़ाहिद भूल जायेगा, मीर को इस बात का ज्ञान है, क्योंकि वह प्रेमी नहीं, वह तो दर्शक मात्र है, और प्रेमी और दर्शक में काफ़ी अंतर है। इसी कारण मीर को मंसूर का मार्ग अच्छा लगता है जो प्रेम में डूबकर वह नहीं बना जिसे पाने को वह आकुल था। उसका द्वैत-भाव मिट गया और सांसारिकता के ऊपर उठकर उसने एकत्व की पुकार की। यह पुकार मीर के हृदय में गहरी उतरी है। वे ज़ाहिद से कहते हैं कि प्रेम का मार्ग अहं के विसर्जन और समर्पण का मार्ग है। इस अवस्था में द्वैत को मिटाना और अहंकार को त्यागना आवश्यक हो जाता है :

मद को तू छोड़ ज़ाहिद, यह (प्रेम का) दर्द ही कुछ और है
एक नशेड़ी की तरह तू बाग़ में झूम रहा है
या तो मंसूर बन या फिर सामने आ
और दिव्य संगीत से परिचित हो ले

मंसूर की अवस्था में पहुँच कर समस्त घृणा और द्वैत-भावना नष्ट हो जाती है ओर मनुष्य के शरीर के विभिन्न अंग जिन क्रियाओं के लिये उत्तरदायी हैं उनमें एक प्रकार का विपर्यय आ जाता है, साधक कानों से देखने और आँखों से सुनने लगता है। ऐंद्रिक संवेदन एक-दूसरे का अतिक्रमण करने लगते हैं; उनके बीच के सारे परदे दग्ध हो जाते हैं। इस बात को व्यक्त करने से कहीं अधिक अनुभव किया जा सकता है। इस प्रकार के अनुभवों को अभिव्यक्ति प्रदान करना सरल बात नहीं। पर मीर इस अनुभव को भी अपने ढंग से शब्दों में पिरोते हैं :

अद्वैत को देखने पर कोई भेद नहीं रहा
व्यक्ति और विश्व का मेल हो गया
'अनलहक' कहा मंसूर ने और तभी से इस बात की चर्चा है
आँखों से सुन तू, फिर कोई संशय नहीं रहेगा

लेकिन ज़ाहिद मीर की बात कहाँ सुननेवाला है, उसे अपने ज्ञान का दंभ है और खोखले मज़हब का दम। प्रेम उसे छू भी गया होता तो उसकी ऐसी चाल न होती। मीर चेतावनी देते हैं :

अपने ज्ञान का कभी गर्व न कर
सीधी-सी बात कहता हूँ, उसे याद रख
बेमतलब जो ढो रहा है तू
यह बोझा तुझे बेकार में मार न डाले

भौतिक ज्ञान उस ज्ञान से भिन्न है जिससे अपने आपको पहचानने में सहायता मिलती है। भौतिक ज्ञान स्कूलों और कॉलेजों से प्राप्त किया जा सकता है, किंतु आध्यात्मिक अथवा आंतरिक ज्ञान गुरु का दामन पकड़ कर और अंदर के समुद्र में डुबकी लगाकर :

वास्तविक ज्ञान तो आत्मज्ञान है
जिससे भौतिक जगत के संशय दूर हो जाते हैं
यह ज्ञान मैंने किसी के पास नहीं पढ़ा
मुझे तो अपने महबूब ने ही यह मार्ग दिखाया है

मीर को इस बात का गर्व है कि आत्मज्ञान पाने के लिये उन्होंने गुरु की शरण ली किंतु सांसारिक ज्ञान पाने के लिये किसी का सहारा नहीं लिया। मिलन की मदिरा पी लेने के बाद पढ़ना-लिखना उनके किस काम का था :

जिसके लिये ज्ञान का अर्थ आत्मज्ञान हो
वही ईश्वर को प्रिय है
वहाँ न तो पढ़ना है, न लिखना है
न शोर करने से ही कोई मतलब है
चौदहों विद्याओं में पारंगत होने पर भी
तू वहाँ कहाँ पहुँच सकता है ?
जिस पढ़ने से साहिब मिले

वह पढ़ना है और

मीर ही क्या, प्रायः सभी सूफ़ियों की दृष्टि में जो पूजा-उपासना किसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर की जाये, उस का कोई मूल्य या महत्व नहीं। इस बात को उन्होंने इन शब्दों में प्रकट किया है :

किसी लोभ से की गयी पूजा
वहाँ जोड़ी नहीं जाती
वह तो बेकार कंधे पर एक बोझ है
लोभ एक ऐसी चीज़ है
जो किसी चीज़ को जमा होने नहीं देती
(लोभ के वश में) तू दो को चार गिनने लगता है
पर वहाँ पहुँच कर छः[१९] को ठोकर मारकर
एक से ही लगन लगानी चाहिये
जिस पढ़ने से साहब मिले
वह पढ़ना है और

आज से कोई एक सौ वर्ष पूर्व प्रसिद्ध शैव कवि लछ काक ने कहा है :

वेद-आगम पढ़-पढ़ कर भी
लोग बहरे हो जाते हैं
अनपढ़ों के मुँह से ही निकलते हैं
चारों वेद और पुराण
"आ" को तू शब्द-ब्रह्म समझ–
इस पथ का ज्ञान तुझे परम पद देगा
अपने मन में सोऽहं का जाप कर
देह के गाँव में शायद ईश्वर से मिलन हो

लछ काक की चर्चा से समद मीर के "शास्त्री" काव्य की याद आना स्वाभाविक है। अन्य सूफ़ी कवियों की भांति उन्होंने भी "शास्त्र" कहा है। उनका कहना है :

कुमति से "त्राहि भगवान" कह
पाप और पुण्य को

१९. पांच इंद्रियाँ और मन ।

एक समान मान कर छोड़
समद मीर ने जो कहा है वह शास्त्र के ही समान है
"सोऽहम्-सोऽहम्" कह तू "सोऽहम्-सोऽहम्" कह !

"शास्त्र" शब्द का सामान्यतः संस्कृत से ग्रहीत शब्दावली और भाषिक प्रयोगों के अर्थ में प्रयोग किया गया है। शास्त्र एक बहुआयामी शब्द है जिसके आदेश, अनुसंधान, नियम, विधि, दर्शन, विज्ञान, साहित्य आदि अनेक अर्थ हैं। इस प्रकार "शास्त्री" काव्य की हदें भी काफ़ी विस्तृत हैं। हमारे सूफ़ी कवियों ने "शास्त्री" काव्य की रचना इसलिये की है कि कश्मीरी में उन्हें वैसी गहन-गंभीर शब्दावली के पर्याय नहीं मिले जैसी शब्दावली उन्हें संस्कृत से दाय के रूप में प्राप्त हुई थी और इस दाय के मीर भी सहभागी थे—ऐसे सहभागी जिन्होंने दाय के अपने भाग को गौरवान्वित किया है। जिस सफलता से उन्होंने संस्कृत शब्दावली का प्रयोग किया है उससे उनकी प्रतिभा का ही सिर्फ़ पता नहीं चलता, बल्कि इस बात के लिये उनसे ईर्ष्या होती है कि किस कलात्मकता से उन्होंने इन प्रयोगों को काव्य में गूंथा है:

तुम्हारा अधिकार है
कि अपने भाव से लौ लगाये रहो
ओ सरल-हृदय, तभी तुम्हारे वचन पूरे होंगे

आत्मज्ञान को प्राप्त कर
तो तू जीते जी ईश्वर का रूप लेगा
तेरा अनुराग, ओ प्रिय, मैंने नहीं छोड़ा
पहले अहंकार को मिटा दे
और फिर सुन रहस्य की बात
व्यर्थ में गहराई में उतरने की
आशा को मत छोड़
मोक्षधाम पहुँचने पर पाप और पुण्य
दोनों नहीं रहेंगे
तेरा अनुराग, ओ प्रिय, मैंने नहीं छोड़ा
स्वप्न, जागृति, सुषुप्ति, तुरीयावस्था

सब कुछ छूट गया, फिर क्रिया कौन करेगा ?
छः[२०] को टटोल चुका हूँ—
मुझसे सारा हिसाब लिया जायेगा
तेरा अनुराग, ओ प्रिय, मैंने नहीं छोड़ा
कपट, अहंकार आदि तीन को मैंने मार दिया
अब यह चौथा पट (गुण) है
उस पट को जैसे कोई चोर
काट ले गया
और मन रूपी राजा को मैंने
आनंद सहित भेजा

समद मीर के "शास्त्री" गीतों को पढ़कर वे सब कवि आँखों के सम्मुख आ जाते हैं जिन्होंने जीवन भर भक्तिपरक गीत लिखे, फिर भी समद मीर की समता न कर सके। मेरे विचार से इसका कारण यह है कि "शास्त्री" कलाम सहित मीर का समस्त काव्य अनुभव के सत्य और सृजन की शक्ति पर टिका है, जबकि भक्ति गीत लिखने वाले अन्य कवियों के पास ऐसा कुछ नहीं था। मीर के एक सशक्त कवि होने का परिचय उनकी नातें पढ़ने से भी मिलता है। उनकी नातों में इस्लाम के पैगंबर के प्रति श्रद्धा का भाव सच्चाई के साथ उपस्थित है, उनमें एक गहरा और मर्म-मधुर संगीत है। एक-एक शब्द विनय के परिधान में लिपटा है। जो ईमानदारी मीर के काव्य में शुरू से आख़िर तक मिलती है, वही उनकी नातों में भी है, किंतु उन्हें प्रभावपूर्ण बनाने में श्रद्धा का विशेष हाथ है :

तुम्हारा ऊँचा क़द मैंने देखा
या मुहम्मद मुस्तफ़ा !
तुम ससीम-असीम से परे, उच्च और महान हो
या मुहम्मद मुस्तफ़ा !
तुम्हारा पवित्र नाम लेकर मैं कठिनाइयों से
पार पाना चाहता हूँ

२०. पांच इंद्रियां और मन।

सौ-हज़ार बार उस नाम से मैं
अपनी जिव्हा को धो लेना चाहता हूँ
या मुहम्मद मुस्तफ़ा !
उस पाक-ज़ात ने तुम्हें पैदा किया
तुम न होते क्या होता ?
सब के अग्रणी, सब के पेशवा
या मुहम्मद मुस्तफ़ा !
तुम्हारी नात,[२१] दरूद,[२२] सलवात[२३]
सब उचित है
ईश्वर ने तुम्हें दिव्य ज्ञान दिया
तुम्हें आखिरी नबी कहा गया
या रसूले अरबी !
ऐ शाह, मेरी ओर भी एक नज़र कर
ताकि मेरा जो काँसा है वह सोना बन जाये
मुरदा दिलों में जान आ जाये
या रसूले अरबी !

ऐ हवा, मदीने के सफ़र पर जा
और उसे मेरा हाल बता
तुझे अल्लाह की क़सम,
मेरा शिकवा उस तक पहुँचाना
कहना उस शाह से कि ऐ पयंबर !
मुझे भेजा है एक मुफ़्लिस ने
जो राह में अकेला पड़ा है
न उसका कोई साथी है, न संगी
उसे मेरा सारा हाल सुनाकर आ, ऐ हवा !

काव्य को अलंकृत करने के लिये मीर ने जहाँ उपमा, रूपक,

२१. वंदना २२. स्तुति २३. प्रार्थना

विरोधाभास आदि का खुलकर प्रयोग किया है, वहां बिंबों-प्रतीकों के प्रयोग द्वारा अपने काव्य-संसार का विस्तार किया है और हमारे लिये सोचने की सामग्री प्रस्तुत की है। इस प्रकार उनकी कविता चित्रकला का एक ऐसा नमूना बन गयी है जिसे अलग-अलग कोणों से देखने पर अलग-अलग दृश्य या रूप नज़र आते हैं :

अपने प्रिय के पीछे-पीछे
अपने महबूब के लिये ऐसा बन
जैसा सात दरवेशों के लिये इंतज़ार करता कुत्ता[२४]
हो सके तो पहले अपनी बलाएँ दूर कर
आकाश में जो उड़ेगा राजहंस
वह कहीं थक न जाये
दाना-दाना तू प्रेम के मोती बिखेर
अरे, एक ही टाँग पर तो गुबरीला
सारी दुनिया का चक्कर लगा सकता है
हो सके तो पहले अपनी बलाएँ दूर कर

अपने आपको एक तरफ़ करके देख
कौन शिव है और कौन शैतान
वह वह है या वह या वह
किसने देखा है ईश्वर को आँखों से ?
औरों के बोल सहे,
क्या कुछ नहीं बीती मुझ पर
मुझ बाला को छोड़
चला गया वह मेरा नागर्जुन[२५] (प्रेमी)

---

२४. जब ये सात दरवेश एक गुफ़ा के अंदर गये तो उनका कुत्ता बाहर वर्षों तक इंतजार करता रहा।

२५. संभवतः कवि का तात्पर्य कश्मीरी की एक प्रसिद्ध लोक-कथा के नायक नागराय से है।

ओ सुकुमारी, तुझसे क्या कुछ कहा गया
कि तू बैठ गयी जाकर न जाने किस घर में !
तू कोई अबाबील है क्या ?
देख री, तेरे झुमके झूम रहे हैं
क़द तेरा सरू जैसा है, कौंच जैसा सुंदर तन
तुझे देख पारा भी शरमा जाये
वक्ष तेरा दर्पण है, अनार जैसे सुंदर स्तन
एक नज़र मेरी ओर तो देख !

समद मीर की कविता आत्मा का संगीत और परियों का गान है। उसमें न किसी कौशल का प्रदर्शन है न कोई दिखावा। शब्दों का प्रयोग ऐसा उपयुक्त है कि एक भी शब्द को अपने स्थान से हटाया नहीं जा सकता। पढ़ने वाले को कहीं अगर कोई फेर नज़र आये तो ऐसा लिपिक की भूल के कारण हो सकता है जो समद मीर के कहे को ठीक से लिपिबद्ध नहीं कर सका होगा। अन्यथा मीर ने तो एक कुशल स्वर्णकार की तरह शब्दों को चुन-चुन कर जड़ा है और अपने गीत के महल को सजाया है। कई स्थानों पर सृजन का आवेग इतना तीव्र और प्रबल है कि पढ़ने वाले को अपने साथ बहा ले जाता है। कई स्थानों पर तो पद्यों की ऐसी रचना हुई है कि सुनने वाला पल भर ठहर कर सोचने लग पड़ता है कि कवि ने क्या कहा है और मेरी समझ में क्या आया है। मेरे विचार से किसी अच्छे शे'र अथवा पद्य की पहचान यह है कि उसे पढ़कर या सुनकर मस्तिष्क को एक झटका-सा लगना चाहिये जिससे बोध के द्वार खुल जायें। मीर की कविता में योगी की चंद्रकला की जैसी शुद्धता भी है और एक प्रबुद्ध मन का प्रकाश भी। पर इस सब के अलावा उसकी विशेषता यह है कि वह कविता है, उपदेश नहीं। उनका उद्देश्य यही है कि पाठक भी उनके अनुभव में शामिल हो जाये। हर मोड़ पर उन्होंने काव्योचित संतुलन बनाये रखा है ताकि कोई एक पलड़ा भारी न हो जाये।

मीर अध्यात्म मार्ग के पथिक थे, पर थे, आख़िर एक मनुष्य ही। वे समाज में रहते थे; जीवन के कष्टों और कठिनाइयों का उन्हें अहसास था। अरस्तू का कथन है कि कोई देवता या फिर कोई दानव ही समाज से

अलग रह सकता है।

मीर एक परिवर्तनशील समाज के संवेदनशील सदस्य थे। जो दिशाहीनता उनके सामने पनप और फैल रही थी उससे वे उदासीन कैसे रह सकते थे ? बर्बादी के इस आलम को वे बर्दाश्त न कर सके और लोगों को उन्होंने चेताया :

आज भी ऐसे लोग हैं जो हज करके आते हैं
मगर वे जब तराज़ू में कुछ तोलते हैं
तो वह वज़न में पूरा नहीं होता
पंसेरी को तीन मन बताकर तू ग्राहक को लूटता है
(तेरे स्वभाव से अभी बचपना नहीं गया)
बज़ाज़ों का तो और भी बुरा हाल है
वह अगर चौथाई गज़ कपड़ा मापेंगे तो वह गिरह भर
कम ज़रूर निकलेगा
कोरे कपड़े को किमख़ाब कहकर बेचेंगे
(तेरे स्वभाव से अभी बचपना नहीं गया)
तेरे वज़ीफ़ों (जापों) और नमाज़ों की कोई गिनती ही नहीं
रात-रात भर जागता है, दिन में रोज़ा रखता है
ज़बान से ख़ुदा का नाम लेता हुआ बेदर्दी से
लोगों का क़त्ल करता है
(तेरे स्वभाव से अभी बचपना नहीं गया)
आकाश लकड़ी जैसा हो गया है और काँसे जैसी धरती
न कोई किसी चीज़ को अमानत मानता है
न किसी को अमीन
सुना है अब बेटा माँ को सास कहने लगा है
(तेरे स्वभाव से अभी बचपना नहीं गया)

कितना सही है यह वर्णन। यह विक्षोभ नहीं, यह तो उथल-पुथल है। कोई भी चीज़ अपनी जगह पर स्थिर नहीं। मूल्य नष्ट-भ्रष्ट हो गये हैं, मानवीय सहानुभूति के सभी दिये बुझ गये हैं। यद्यपि इस विक्षोभ का संबंध तीस वर्ष पहले की स्थिति से है, पर आज की परिस्थिति में भी यह कितना

सार्थक है। मीर आज जीवित होते तो शायद अपने कपड़े फाड़कर निकल पड़ते। उनके समय तक पश्चिमी सभ्यता की बाढ़ ने इतना विकट रूप धारण नहीं किया था जितना आज। मीर का युग कश्मीर में प्राचीन और नवीन के बीच संघर्ष और टकराहट का युग था। १९४७ के बाद यह संघर्ष और तीव्र हो चला था। मूल्यों के रूप में जो कुछ सहेज कर रखा गया था, वह सब नष्ट हो गया। सभी कुछ अस्त-व्यस्त हो गया और इस अस्त-व्यस्तता के बीच कोई राह निकालना बड़ा कठिन हो गया। समद मीर ने अपना सारा जीवन एक ढंग से बिताया था और अब उनका एक संक्रान्ति युग से सामना था जिससे वे समझौता नहीं कर सके। समझौता करना संभव ही न था क्योंकि एक हरी टहनी तो मुड़ सकती है, पर एक कड़ी टहनी टूट जाती है। सभी कुछ को नष्ट होते देख उन्होंने पीड़ा भरे स्वर में कहा :

मच्छर निकला है हाथी से
लेने को टक्कर
पीछा करे शेर का लोमड़
यह कैसा चक्कर
और सियार कटार कमर में
रखकर पहुँचा वन
प्रिय, आकर ज़रा ठहर जाना दो क्षण !
दिल का तो रेहान[२६] से ही आराम बड़ा आये
पर बिच्छू बूटी को देखो
कैसे इतराये
सोते और समंदर में है
कैसा समीकरण ?
प्रिय, आकर ज़रा ठहर जाना दो क्षण !

सरपट-सरपट जो दौड़ रहा था
वह गर्दभ शावक आख़िर कसाई के हाथों मारा गया

---

२६. तुलसी की जाति का एक पादप।

बिना मोल-तोल किये औने-पौने भाव में
बेच डाला गया बेचारा
लल्लेशवरी की थाली से कभी सिलबटा न गया[२७]

समद मीर कश्मीरी भाषा के एक बड़े कवि थे। उनकी कविता सामयिक नहीं; वह हर युग में प्रतिष्ठा पाती रहेगी। वे उतने ही महान सूफ़ी कवि हैं जितने शम्स फ़कीर[२८] या न्याम साहब[२९] थे। उनके गीत गत पच्चीस वर्षों से गूंजते आ रहे हैं। लोग इस गीतों को सिर-माथे से लगाते हैं। समद मीर की लोकप्रियता में कभी कमी नहीं आयी क्योंकि उनके गीतों में एक ऐसा रस है जो हमें मदहोश करके नित नये लोकों की यात्रा कराता है।

समद मीर का समस्त काव्य या तो "वचन" (गीत) शैली में रचा गया है या पदों में। कुछ गीत गज़ल से भी समानता रखते हैं, किंतु उन्हें ग़ज़ल नहीं कहा जा सकता। किंतु "वचन" अथवा गीत के परंपरागत रूप को भी उन्होंने ताज़गी और एक नयापन प्रदान किया जिससे उसकी संभावनाओं का सबको पता चलाः

ऐ समद मीर, तेरा रहस्य तो
शब्दों से परे है
बता तेरा स्थान कहाँ है ?

रहस्य को कविता का रूप देना कुशलता की भी माँग करता है और काव्यात्मक साहस की भी।

"अकनंदुन"

समद मीर की एक और कृति है "अकनंदुन" जिसकी रचना चौदह भागों में हुई है। "अकनंदुन" की लोककथा पर आधारित काव्य की रचना अनेक कवियों ने की है, किंतु समद मीर रचित "अकनंदुन" में रहस्य का वातावरण इतना गहन है कि पाठक एक रहस्यलोक में पहुँच जाता है। "अकनंदुन" के नाम से रची गयी सभी कृतियों में मूल कथा एक-सी है,

---

२७. सुप्रसिद्ध कश्मीरी संत कवयित्री लल्लेश्वरी के बारे में कहा जाता है कि उनकी सास उनकी थाली में एक सिलबटा रख देती थी ताकि थोड़े-से चावल ढेर सारे दिखें।
२८. और २९. १९वीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध कश्मीरी सूफ़ी-कवि।

किंतु कवियों के सोचने के अपने-अपने ढंग ने कथासूत्र को प्रभावित किया है। मूल आख्यान में मौखिक परंपरा से चला आया है। मिर्ज़ा अकमल बदख़्शी वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने इस आख्यान को फ़ारसी भाषा में रूपांतरित किया। संभवतः इसी रूपांतर के माध्यम से यह आख्यान कश्मीरी में पहुंचा। मौखिक परंपरा को जाने दें तो इसे ही इस कथा का प्रथम लिखित साक्ष्य माना जा सकता है।

समद मीर ने अकनंदुन के बाप का नाम हरनाम और माँ का सोनमाल दिया है। अहद ज़रगर ने योगी को नारद कहा है, किंतु मीर के "अकनंदुन" में योगी को गुसाईं (साधु) के नाम से संबोधित किया गया है। मीर ने मूल कथा के उन्हीं वृत्तांतों और प्रसंगों को लिखा है जिनकी व्याख्या उन्होंने अपनी कविता में भी की है। मीर के "अकनंदुन" में गुसाईं शिव का रूप प्रतीत होता है। आठवें भाग के अंत में समद मीर स्पष्ट करते हैं :

रूप बदलते रहना तुम्हारा ही काम है
ऐ समद मीर, जो बाहर है, गुहा के अंदर भी वही है
आना-जाना तो लगा ही रहता है वहाँ
जय हो, आज हमारे आँगन में गुसाईं आये हैं

समद मीर के "अकनंदुन" का उद्देश्य है आत्मज्ञान की प्राप्ति और इस संदर्भ में कवि के व्यक्तिगत अनुभव के अनेक उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं। कृति की एक विशेषता यह है कि इसका आधा भाग मसनवी के रूप में रचित है और आधा गीतों के रूप में। कथा के वर्णन में हिंदू मिथकों का खुलकर प्रयोग किया गया है जिससे उस गहन रहस्यात्मक वातावरण का निर्माण हुआ है जिसकी ओर हम शुरू में संकेत कर चुके हैं। मीर की अन्य रचनाओं की भांति "अकनंदुन" में भी अभिव्यक्ति का एक अलग ही ढंग है। "अकनंदुन" की रचना करके उन्होंने रहस्यों को व्यक्त किया है, किंतु इन रहस्यों का अर्थ खोजने वाला भी तो होना चाहिए।

मिर्ज़ा अकमल बदख़्शी (१६४५-१७१९) का कहना है कि "अकनंदुन" की कथा उनके समय भी काफ़ी लोकप्रिय थी। लोकगायक सूफ़ियों और संतों को सुनाने के लिये इस कथा को साज़ पर गाते थे और वे इसे सुनकर झूम उठते थे। वे इस मत का समर्थन करते हैं कि कथा का मूल स्रोत कश्मीर

ही है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने 'अकनंदुन' के बारे में स्पष्ट कहा है, "एक कश्मीरी पुस्तक में एक कथा है जो साधकों का मार्गदर्शन करती है। ईश्वर की तलाश करने वाले इस कथा को सच्ची मानते हैं। सत्य का मार्ग स्वेच्छा और स्वीकृति का मार्ग है, और यह कथा साधक के प्रशिक्षण के लिये उपयुक्त है। जो कोई भी सत्य के मार्ग पर चलना चाहे उसे मेरी बात को और इस कथा को सच मानना चाहिये।"

मिर्ज़ा अकमल के कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कश्मीरी भाषा में "अकनंदुन" की कथा १७वीं शताब्दी में निश्चय से लिखित रूप में विद्यमान थी। प्रो० गिरियारी लाल तिक्कू ने लिखा है कि "अकनंदुन" शब्द "एक आनंद" (एकत्व का आनंद) का कश्मीरी रूप है। उनके विचार से यह कथा जर्मन आख्यान साहित्य की "डर रीज़ उंड डास कींड" नाम की कथा से समानता रखती है। मेरे विचार से "अकनंदुन" सीधे "एकनंदन" शब्द का कश्मीरी रूप है।

चयन

ओ नये मास के चाँद !

मुझसे यों छिपो मत ओ नये मास के चाँद
मुझसे यों छिपो मत !

दिन भर मैं करती रही तुम्हारा इंतज़ार
पर अब भी तुम्हारी नाराज़गी नहीं गयी ?
ओ नये मास के चाँद
मुझसे यों छिपो मत !

हवा-सी मैं आती तुम्हारे पास
और पहुँचाती तुम तक अपने सारे-शिकवे-शिकायतें
पी लेती पानी का एक घूंट
तुम्हारी नदिया पर
ओ नये मास के चाँद
मुझसे यों छिपो मत !

ओ मेरे प्रियतम, देखो तो कैसे क्रीड़ा कर रहा है
सुंदर हिरणों का झुंड
बाग़ में जाकर देखो
कैसे दिल में दाग़ लिये
खड़ा है गुले-लाला[1]
ओ नये मास के चाँद
मुझसे यों छिपो मत !

कैस जाल में फंसा कर छोड़ गये हो
मुझे सिमटी-सकुचायी

---

१. पॉपी जाति का एक लाल फूल

सोने की कुरेदनी-सी मैं तुम्हें
अपने कुरते के गले से लगाये रखती
ओ नये मास के चाँद
मुझसे यों छिपो मत !

मुझ मैदान की मिट्टी को
तुम कमाल पर पहुँचा कर आये हो, ओ कुंभकार
बना रहे हो मुझसे कितने ही पात्र
प्रेम की दूकान पर
ओ नये मास के चाँद
मुझसे यों छिपो मत !

भोली-भाली मैं
बीते ख़यालों में डूबी
जाने यह किधर निकल आयी हूँ
दौड़ी आयी हूँ तुम्हारी ही टेर सुनकर
ओ नये मास के चाँद
मुझसे यों छिपो मत !

निकल चला था समद मीर अपने घर से
रत्न की तलाश में
अब इस इंतज़ार में है
कि तुम्हारे द्वार पर जाने कैसा होगा स्वागत
ओ नये मास के चाँद
मुझसे यों छिपो मत !

नोट : इस विनिबंध में संकलित कविताएँ समद मीर की प्रामाणिक और अधिकृत रचनाएँ हैं। ये उस पांडुलिपि से ली गयी है जो कवि के सामने ही लिपिबद्ध करायी गयी थीं। इनका चयन और संपादन स्वयं कवि ने अपनी देखरेख में कराया था।

प्रिय, आकर ज़रा ठहर जाना दो क्षण !

जल गया आग में
सोनकली का तन
प्रिय, आकर ज़रा ठहर जाना
दो क्षण !

अब तो बस तेरे दरस-परस से
अच्छा होगा व्रण
प्रिय, आकर ज़रा ठहर जाना
दो क्षण !
मैं तट पर खिली कली हूँ
पहुँचूँगी मैं भला कहाँ ?
कोई भी मेरे पास
कभी तो आया नहीं यहाँ
दुलराऊँ कैसे छाती में
उसको जो है पाहन ?
प्रिय, आकर ज़रा ठहर जाना
दो क्षण !

घोड़ा उसका, सिरमौर उसी का
उसकी ही तो नाव
जो पहले पनपे—
पहले ही चल जाये जिसका दाँव
क्या देखे बिना
वहाँ पर भी होता है
आबंटन ?
प्रिय, आकर ज़रा ठहर जान।
दो क्षण !

ओ तू, तूने भी तो
कितनों का भटकाया है ध्यान
कितने हैं जिनका
पूरा हो पाया है यह अरमान–
खा-पीकर अपनी अंटी में भी
साथ ले सकें धन ?
प्रिय, आकर ज़रा ठहर जाना
दो क्षण !

करके दुलार
मैं कहूँ कि तू फिर एक बार आ जा
आकर मुझको अपना मुखड़ा
तू फिर से दिखला जा
मैं रही देखती अपलक
तुझको ही हर दिन
हर छन
प्रिय, आकर ज़रा ठहर जाना
दो क्षण !

अंगूर लता यह
टेढ़ी-मेढ़ी चढ़ती ही जाये
उसका जो बल है.
मगर कभी वह निकल नहीं पाये
कारीगर चाहे ठोंक-पीट कर
कर ले लाख जतन
प्रिय, आकर ज़रा ठहर जाना
दो क्षण !

मच्छर निकला है हाथी से
लेने को टक्कर
पीछा करे शेर का लोमड़—
यह कैसा चक्कर !
और सियार कटार कमर में
रखकर पहुँचा वन
प्रिय, आकर ज़रा ठहर जाना
दो क्षण !

दिल का तो रेहान[१] से ही
आराम बड़ा आये
पर बिच्छू-बूटी को देखो
कैसे इतराये
सोते और समंदर में है
कैसा समीकरण ?
प्रिय, आकर ज़रा ठहर जाना
दो क्षण !

मले नाक पर केसर
ज़रा अगर आ जाये छींक
उसको हो सकता क्या हासिल
उसका क्या है ठीक ?
अरखल[२] का जसा ही जो
समझे विशुद्ध चंदन
प्रिय, आकर ज़रा ठहर जाना
दो क्षण !

---

१. तुलसी की जाति का एक पादप।
२. एक पेड़ जिसे छूने से फफोले पड़ते हैं।

समद मीर का दाँव चला
जब परकीया की आँख–
लगी, लिया काला-सफ़ेद सब
उसने पूरा आँक
दाने-दाने का कर आया
पूरा विश्लेषण
प्रिय, आकर ज़रा ठहर जाना
दो क्षण !

बात

बात की बात में बात कहीं चुक न जाये
हम तो बस सहमते ही रहे

सौ तरह से तन की वासना को तृप्त करो
फिर भी वह दौड़-भाग करेगी ही
हम तो बस सहमते ही रहे

पत्थर में से निकला यह जो हीरा है
देख लो अच्छी तरह पहचानो
कहीं किसी संशय की छाया न रह पाये
अंधे ! क्या सोच रहे हो ?
अभी भी तुम्हारा गर्व नहीं गया ?
हम तो बस सहमते ही रहे

यौवन का कस्तूरा चहक रहा है
ऊंचाइयों पर अपने लिये जगह बनाता हुआ
हम तो बस सहमते ही रहे

वहाँ का कोई पता नहीं मिलता

सोचा पतिंगे ने
और पैग़ाम लाने वहाँ गया
पहुँचा तो कुछ कह ही नहीं पाया
हम तो बस सहमते ही रहे

दुनिया यह बिल्कुल है खेत जैसी
ज़रूरी है हर समय उसकी देखभाल
तभी कोई उलझन पैदा न होगी
"अंत में लपेट लेगा शून्य ही"—
आयत है कुरान की
हम तो बस सहमते ही रहे

कभी ले लेता है अपनी छाया तले
कभी वह पकड़ लेता है दामन
कभी-कभी रंक को पहनाता है ताज
कभी वह खाता है, कभी खिलाता है
(और के खाये का ऋण चुकाते हुए)
हम तो बस सहमते ही रहे

काबे के दरवाज़े पर झूठ खड़ा है पहरेदार-सा
अपनी पूजा आप कराता हुआ—
प्रति दिन, दसों दिशाओं में
फिर भी उसे कभी पूरा नहीं पड़ता
हम तो बस सहमते ही रहे

जो निश्छल-निर्भय हो उलीच सके समुद्र को
उससे अपना राज़ कहो समद मीर
ऊपर से नीचे तक
क्यों कर रहे हो यों शोर ?

नोट : यह गीत पहली बार प्रकाशित हो रहा है।

चोर मेरे यौवन के !

छल किया तूने मूझसे
ओ चोर मेरे यौवन के !
पल भर के लिये यहाँ रुक जा
मत चला जा दूर छोड़कर मुझको
ओ चोर मेरे यौवन के !

दोष लगाया तूने मुझ सोन-चिरैया पर
मैं तो कपड़े फाड़कर निकलूँगी
करूँगी तुझसे सवाल-जवाब
भंग पिला कर रख दिया मुझ स्वर्ग की अप्सरा को
ओ चोर मेरे यौवन के !

सुन, तुझे हृदय में झुला रही हूँ अपने
लम्बी ज़बान वालों के लिये वहाँ कोई जगह नहीं
तू तो उजाला है भोर का
किरणें बिखेरता हुआ
ओ चोर मेरे यौवन के !

तुझे क्या याद दिलाऊँ
मेरी कानों की बालियों को तूने चूर-चूर कर दिया था ?
गले में डाल दिया था मेरे जाल-जंजाल ?
ओ चोर मेरे यौवन के !

प्यार के ओ भंवरे ! ले गया तू मेरा हृदय
और फिर ज़रा भी परवाह न की
नरगिस को तू कितना तड़पता हुआ छोड़ गया
ओ चोर मेरे यौवन के !

मेरे रहस्यों को अपने हृदय में ही रख

थोड़ी देरे के लिये आ जा
तेरी चेरी बन कर रहूँगी
बजाऊँगी ख़ुशी से संतूर का साज़
ओ चोर मेरे यौवन के !

पढ़-पढ़कर भी मंज़ूर न हो जिसकी अरज़ी
ज़रूर उस पर अपने ही दुर्भाग्य की छाया है
पर सावधानी और अभ्यास कहीं गये हैं ?
ओ चोर मेरे यौवन के !

मेरे होंठ सूखे हैं और मैं बेबस हो गयी हूँ
पर प्रेम के वैद यहाँ कितने हैं ?
मेरे बैर से तूने मुझे दे दी यह प्रेम की ज़ंजीर
ओ चोर मेरे यौवन के !

ज़्यादा नाचने से ज़्यादा चक्कर आता है
इसीलिये तो चुप है समद मीर
सब न्याय-अन्याय की बात तुझे बतलाने को व्याकुल
ओ चोर मेरे यौवन के !

पल भर के लिये यहाँ रुक जा
ओ चोर मेरे यौवन के !

ओ भंवरे, वह तो नरगिस है !

चुन ले चमेली और मसवल[1] के फूल
ओ भंवरे, वह तो नरगिस है !

जैसे अर्पित करते हैं जायफल को
ऐसे तू त्याग दे अपना गर्व
ओ भंवरे, वह तो नरगिस है !

---

१. एक कश्मीरी फूल का नाम।

बस गयी हूँ नाम अगर इसका है बसना
सुनते ही सारी दुनिया उमड़ आयी इस बस्ती में
गिर गया मेरे हाथ से सब कुछ छूटकर
ओ भंवरे, वह तो नरगिस है !

तेरे रूप की आग में जलते हैं (सब फूल)
मरते हैं, बहाते हैं आँखों से दरिया
रोते हैं अपनी बेकसी का रोना
ओ भंवरे, वह तो नरगिस है !

मंडराता है तू श्वेत पुष्पों पर
और मैं कभी खुश होती हूँ, कभी खिन्न
ज़ंजीरों में जकड़ी मैं खड़ी हूँ हाथ बांधे
ओ भंवरे, वह तो नरगिस है !

कौन-सा मलाल तू मन में छिपाये है
कर गया है तन तेरा क्षत-विक्षत अहेरी-सा
सीने में मेरे तेरे तीर की नोक है
ओ भंवरे, वह तो नरगिस है !

गिन कर देख लिया है अच्छी तरह मैंने
मनों बेचकर मैंने सिर्फ़ कौड़ी पायी है
भरा खलिहान मेरा अब मुट्ठी भर शेष है
ओ भंवरे, वह तो नरगिस है !

उतरता ही नहीं है यह प्रेम का ताप
तू ही लुकमान है मेरा, तू ही अफ़लातून
पर बाट जोहते-जोहते मेरी जान मुँह को आयी है
ओ भंवरे, वह तो नरगिस है !

नोट : यह गीत पहली बार इस विनिबंध में पूरे का पूरा दिया जा रहा है। 'कुलायत-ए-समद मीर' (समद मीर रचनावली) में इसके कुछ चुने हुए पद्यांश ही दिये गये हैं।

निकल पड़ती अकेली ही, मगर हूँ अनजान
तप रही हूँ मैं जैसे सूरज के समान
जल रही हूँ जैसे हो प्रेम की मशाल
ओ भंवरे, वह तो नरगिस है !

सह रही हूँ अपने सुंदर शरीर वाले प्रेमी का छोह
रहस्यों में एक यह मेरा रहस्य है
कह दिया है समद मीर ने थोड़े में पूरा हाल
ओ भंवरे, वह तो नरगिस है !

दर्द की दवा

प्यार की आग ने मेरा जुही-सा तन जला डाला
वह आता तो मेरे दर्द की दवा हो जाती
मेरे मासूम-से दिल पर रख दिये गये हैं जैसे अँगारे
मैं तो उसी की आस में बैठी थी
वह आता तो मेरे दर्द की दवा हो जाती

दिल के खून की बनायी है मैंने तरकारी
तेल के बदले डाली है उसमें अपने आँसुओं की धार
प्याले भर-भर कर उसे पीने को दूँगी
वह आता तो मेरे दर्द की दवा हो जाती

प्यार भरे कलेजे के अपने मैंने बना डाले हैं कबाब
मेरा सुकुमार तन घोर यंत्रणा में तड़प रहा है
अब आ जाये और खा ले ये नान और गोश्त
वह आता तो मेरे दर्द की दवा हो जाती

नोट : यह गीत पहली बार प्रकाशित हो रहा है।

वादे कर-कर के उसने मुझे कितना तड़पाया
क्या मैं इस तरह से दग़ा दिये जाने योग्य हूँ ?
कभी-कभो तो दिखा जाता अपने दरस
वह आता तो मेरे दर्द की दवा हो जाती

वह मुझसे ख़फ़ा है, और लोगों ने मुझ पर पत्थर बरसाये
कोई हंसी-खेल नहीं – वह मेरा क़त्ल कर गया है
ऐ समद मीर कह दे उससे, शायद तेरी बात पर कान धरे
वह आता तो मेरे दर्द की दवा हो जाती

किसी ने तुम्हें नहीं बताया ?

सारी उम्र तुम्हारे ही पीछे-पीछे
चला आया
किसी ने तुम्हें नहीं बताया ?

कई-कई बार मैंने न कुछ पिया
न खाया
किसी ने तुम्हें नहीं बताया ?

मिट्टी और शहद
दोनों यहाँ बिकते हैं एक ही भाव
पर घोड़ों ने कब खाया माँस
शेरों को किसने घास खाते पाया ?

अपनी ही लाश को जलाकर[१]
जब मैं निकल आया बाहर
और अपनी असली जगह को देखा
तो वहाँ अंधा
आँख वालों की रखवाली करता नज़र आया
किसी ने तुम्हें नहीं बताया ?

१. अपने अहं को मिटाकर।

पहाड़ों को करके पार
दम भरता है सियार
पर कोई कितना ही उछले
तुम्हारे विचार तक कौन पहुँच पाया ?
किसी ने तुम्हें नहीं बताया ?

वही मरा
जो भूला अपने आपको
उससे हमारा कुछ भी लेना-देना
क्या फिर रह जाता है बकाया ?
किसी ने तुम्हें नहीं बताया ?

दोनों आँखें बंद कर
उलटा लटक गया चिमगादड़
अपने आपको उसने छिपाया
किसी ने तुम्हें नहीं बताया ?

कस्तूरों, फाख़्ताओं, कबूतरों ने
तोते की-सी (मीठी) बोली बोली
नन्हीं चिरैया ने उनका
फिर भी मज़ाक उड़ाया
किसी ने तुम्हें नहीं बताया ?

देखो तो इस समद मीर को
रूठ कर जा बैठा है नंबलहार में
उसका ज़री का परिधान
तार-तार होने को आया
किसी ने तुम्हें नहीं बताया ?

सत्गुरु का संवाद ('शास्त्री' गीत)

सत्गुरु का संवाद –

आकाश, पाताल छहों
दिशाओं में
चित्त तुरग को है अब
रखना सीमाओं में
सत्गुरु का संवाद –

कपट से तुम मुक्त करो
मन को
योग के अभ्यास से
निर्दोष रखो तन को
सच निकल आयेगी निश्चय
मुँह से कही हर बात
सत्गुरु का संवाद –

ज्ञान और अज्ञान
बस बाहर का खेला है
निष्काम कर्म
लाभ देता अकेला है
अपने को जान लो, उठाओ –
निर्मल आनंद तुम निर्बाध
सत्गुरु का संवाद –

इस लोक को तुम
संवारो

उस लोक को भी
सुधारो
देह के संस्कारों से अब तो
मुक्ति मिल जाये अवदात
सत्गुरु का संवाद –

मर्यादा पुरुष को
जाग्रत कर
सुषुप्ति में सुन लो
भीतर के तारों का झंकृत स्वर
चैतन्य ईश्वर का ही नाम है
बात है यह सत्य, निर्विवाद !
सत्गुरु का संवाद –

नारद का है यह
उपदेश
पारद का दमन हो
विशेष
वीतराग बन जाओ निर्द्वन्द्व
काम का विदग्ध हो उन्माद
सत्गुरु का संवाद –

लोभ ने सब हर लिया
आनंद
अखंड ब्रह्मांड से
विच्छिन्न कर मेरा संबंध
आ पहुँचा मेरे लिये तब
सत्य का आदेश अकस्मात्
सत्गुरु का संवाद –

भरेगा
मन रूपी राजा उड़ान
मोह के शरीर का
करूँ मैं बलिदान
सुन लो यह मेरा उपदेश तुम –
बन सकता है यह बुनियाद
सत्गुरु का संवाद –

आकाश, पाताल, छहों दिशाओं में
चित्त तुरग को
रखना है सीमाओं में
सत्गुरु का संवाद ।

इश्क़ में

इश्क़ में यह दिल मेरा होश गंवा बैठा है
भुला नहीं पाती हूँ उसको
संकट पर संकट चुपचाप सहे जाती हूँ
भुला नहीं पाती हूँ उसको

डंसते हैं सांप मुझे, देखो गली-गली–
खोजने मैं उसको चली हूँ
या जाकर सप्तर्षि तारों से पूछो
भुला नहीं पाती हूँ उसको

गूंगे-बहरे वहाँ इतराते चलते हैं
पंगु है फलांगते छतों को
अंधों को देती है छाया तक दिखलायी
भुला नहीं पाती हूँ उसको

दूर से ही अपनी वह झलक दिखा जाता है
चोर जो है मेरे यौवन का
ऐसे में मन मोर डर से भर जाता है
मेरे आँसुओं से तालाब भरे तेरे हैं
भुला नहीं पाती हूँ उसको

ओ रे मन मेरे तू थोड़ा तो भेद कर
अरखल और चंदन के पेड़ में
अदफ़र और अंबर की सुगंधियाँ क्या एक हैं ?
भुला नहीं पाती हूँ उसको

वन की हरियालियों में सांप छिपे बैठे हैं
करते हैं तेरे ही शिकवे
सोते पर नन्ही चिरैया आ जाती है
भुला नहीं पाती हूँ उसको

मोती और माणिक का रंग भले एक हो
संग मगर उनके अनेक हैं
तोते और नीलक्रश[1] पक्षी में मेल क्या
भुला नहीं पाती हूँ उसको

मेरे दिलदार, मेरे यार अब तो आ जा
दूँगी मैं जान तेरे वास्ते
तेरी ही आग में मै राख हुई जाती हूँ
भुला नहीं पाती हूँ उसको

पर्वतों की चोटियों पर फिरते कुलमार[2] हैं
बैठे शृगाल वहाँ घात में

---

१. कश्मीर में पाया जाने वाला एक छोटा-सा पक्षी।
२. सांप जिसके दंश से पूरे कुल का नाश हो जाता है।

निर्दोषों को मारें शेरों को हुक्म नहीं
भुला नहीं पाती हूँ उसको

सजा-सजाया देखो खड़ा है
घोड़ा यह नाज़ुक चाल का
उस पर मैं डालूँगी रेशम का कपड़ा
सुंदर-से फुंदनों वाला
भुला नहीं पाती हूँ उसको

जान कर अनजान यों मत बन मन मेरे
काफ़िला तो तेरा बड़ी दूर है
कैसे-कैसे यहाँ फंसे हैं जाल में
भुला नहीं पाती हूँ उसको

समद मीर इश्क़ की क्या भेंट लाये, दफ़्तर में–
जगहें सब भर दी गयी हैं
फिर भी जगह एक खाली है वहाँ पर
भुला नहीं पाती हूँ उसको

इश्क़ में यह दिल मेरा होश गंवा बैठा है
भुला नहीं पाती हूँ उसको ।

नोट : यह गीत पहली बार प्रकाशित हो रहा है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

कश्मीरी :

१. अमीन कामिल : सूफ़ी शायरी (भाग ३)

२. अमीन कामिल, अख़्तर मुहीउद्दीन : सोन अदब १९५९

३. शफ़ी शौक़ : कोशिरि अदबुक तोरीख़

४. मोतीलाल साक़ी : कुलयात-ए-समद मीर

उर्दू :

१. शीराज़ा : मई १९६४

२. सरदार जाफ़री : कबीर बानी

अंग्रेजी :

१. बांके बिहारी : सूफ़ीज़ ऐंड मिस्टिक्स ऑफ़ इंडिया

२. डॉ. राधाकृष्णन : उपनिषद्ज़

३. फ़तेहुल्लाह मुज्तबा : आस्पेक्ट्स ऑफ़ हिंदू-मुस्लिम रिलेशनशिप्स

४. जे. स्पिन्सर ट्रिमिंग्घम : द सूफ़ी ऑर्डर्स इन इस्लाम

५. वुडरोफ़ : ए गारलैंड ऑफ़ लेटर्स